

गांधी की हत्या क्या सच, क्या झूठ

चुन्नीभाई वैद्य

गांधी की हत्या क्या सच, क्या झूठ

•

लेखक
चुनीभाई वैद्य

•

अनुवादक
महादेव विद्रोही

सर्व सेवा संघ प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी

ISBN
978-93-83982-19-6

प्रकाशक :

सर्व सेवा संघ-प्रकाशन,

राजघाट, वाराणसी-221 001

फोन नं. : 0542-2440385

Email-sarvodayavns@yahoo.co.in

संस्करण : बारहवाँ

प्रतियाँ : 5,000

कुल प्रतियाँ : 51,000

सितम्बर, 2014

अक्षर संयोजन :

पाठक कम्प्यूटर

गायघाट, वाराणसी

मूल्य : बीस रुपये

मुद्रक :

महावीर प्रेस,

भेलूपुर,

वाराणसी-221010

प्रकाशकीय

भारत की सनातन धारा को, जिसे महात्मा गांधी ने युगधर्म से जोड़कर राष्ट्रीय जन-आन्दोलन और सत्याग्रही प्रक्रिया द्वारा अधिक गतिशील बनाया था, प्रदीप दलवी के मराठी नाटक 'मी नाथूराम गोडसे बोलतोय' को माध्यम बनाकर एक बार फिर अवरुद्ध करने की कोशिशों की जा रही है। इसके पीछे जो शक्तियाँ काम कर रही हैं वे धार्मिक उन्माद पैदाकर लोक-विरोधी अपना राजनीतिक उद्देश्य सिद्ध करना चाहती हैं। झूठ, भ्रम और अर्धसत्य (जो असत्य से भी अधिक घातक होता है) फैलाना, विभिन्न धर्मावलम्बियों के बीच नफरत की खाई चौड़ी करना उनका मुख्य काम है। महात्मा गांधी का व्यक्तित्व एवं विचार उनके इस प्रयास में आज भी एक जबरदस्त अवरोध बनकर खड़ा है। अतः उनकी दैहिक हत्या के पचास साल बाद फिर से उस महापाप का औचित्य सिद्ध करने की कोशिश शुरू हुई है। यह काम सत्य का वध और असत्य का प्रसार करके ही सम्भव होगा, शायद ऐसा उन्हें विश्वास है। लेकिन हमारी आस्था है कि भारत की आत्मा 'सत्यमेव जयते' की जगह 'असत्यमेव जयते' को कभी भी स्वीकार नहीं करेगी। अपनी इसी आस्था को उजागर करते हुए, सर्वोदय-आन्दोलन के वरिष्ठ कर्मयोगी, चिन्तक, लेखक श्री चुनीभाई वैद्य ने महात्मा गांधी की हत्या के सन्दर्भ में गढ़े गये, फैलाये गये और फैलाये जा रहे झूठ का पर्दा उठाकर सत्य को, तथ्य को प्रस्तुत करने का पराक्रम किया है इस पुस्तिका 'गांधी की हत्या : क्या सच, क्या झूठ' के माध्यम से।

गुजराती, मराठी, उर्दू, अंग्रेजी आदि कई भाषाओं में इस पुस्तिका के अनुवाद छप चुके हैं और हर भाषा-भाषी लोगों ने इसका हार्दिक स्वागत किया है। सर्व सेवा संघ प्रकाशन द्वारा हिन्दी का यह संस्करण प्रकाशित करते हुए सन्तोष और सार्थकता का अनुभव हो रहा है।

हमें आशा है कि अन्य संस्करणों की भाँति इस संस्करण का भी जिज्ञासु नागरिकों द्वारा भव्य स्वागत होगा।

—संयोजक

पुस्तिका में समाविष्ट मुद्दे

१. अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और उस की सीमा। गांधी की अभिव्यक्ति को उनकी हत्या करके भी अवरुद्ध करने का गोडसे को तो अधिकार और केवल वैरभाव तथा विषैले प्रचार के उद्देश्य को लेकर लिखे गये नाटक को प्रतिबन्धित करने का अधिकार समाज या सरकार को नहीं। यह कैसा न्याय ?
२. गांधीजी की हत्या के प्रयासों का क्रमबद्ध विवरण।
३. दण्ड देने का अधिकार केवल सरकार को, अन्य किसी को नहीं।
४. हत्या के जो कारण बताये जाते थे और बताये जा रहे हैं वे सभी सरासर झूठ हैं। जब इन कारणों का अस्तित्व भी नहीं था हत्या के प्रयास क्यों हुए ?
५. मुसलमानों को राष्ट्र की मुख्य धारा में लाने के विशेष प्रयास गांधी के आगमन के बहुत पहले के चल रहे थे।
अलग मतदाता मण्डल तथा मुसलमानों को आबादी से अधिक प्रतिनिधित्व देने में अन्य नेताओं की भूमिका।
६. पाकिस्तान की अवधारणा, हिन्दूवादियों द्वारा नासमझी में उसका स्वीकार।
७. मुसलमानों को अपनाने और दूर रखने की प्रक्रियाएँ।
८. गांधीजी की ईश्वर-निष्ठा, धर्म-निष्ठा, व्यापक मानव-धर्म के सामने हिन्दू-धर्म के ठेकेदारों की लाचारी।
९. अभेद की गांधी की प्रक्रिया, अलगाव की हिन्दूवादियों की प्रक्रिया।
१०. गोबेलियन चाल—झूठ को बार-बार दुहराते रहो, लोग उसे सच मानने लगेंगे—गांधीजी और कांग्रेस को बदनाम करने की चाल।
११. राष्ट्रवादी मुसलमान और कांग्रेस।

१२. माउण्टबेटन का आखिरीनामा—कांग्रेस की उलझन।
१३. विश्वास-द्रोह की गांधीजी की भावना। असाध्य परिस्थिति का स्वीकार।
१४. विभाजन का विरोध करने में गांधीजी ने दूसरों का साथ क्यों नहीं दिया—समझ में न आनेवाली हिन्दूवादियों की माँग।
१५. पचपन करोड़ रुपये—शठ प्रति शाठ्य की नीति का अस्वीकार—
नैतिकता का व्यापक प्रतिभाव।
१६. हत्या के लिए जिम्मेवार कौन? क्यों? गांधीजी पूरे देश पर छा गये—
क्या बात हुई?
१७. हत्या का षड्यंत्र क्यों रचा गया?
१८. कठोर वचन केवल हिन्दुओं को ही नहीं, मुसलमानों को भी।



उजाले की ओर

वध के तत्त्वज्ञान को मानो स्वीकृति मिल रही हो ऐसे माहौल के बीच चुनीकाका कुछ बुनियादी बातें और तफसील, प्रश्नोत्तर के स्वरूप में लेकर आये उसके लिए पूरा देश विशेषकर—विकसित हो रही युवा-पीढ़ी उनकी ऋणी रहेगी।

जिस प्रकार रामायण और महाभारत हमारे सांस्कृतिक स्थित्यंतर और समाज-परिवर्तन के मंथन काल का जीवन्त चित्रण है, उसी प्रकार बीसवीं सदी के पूर्वार्ध में स्वराज्य के संग्राम में गांधीजी का नेतृत्व हमारे समय के महाकाव्य के समान है।

ऐसा महाकाव्यमय जीवन जीते ईसा और सुकरात की भाँति विशेष रूप से लिंकन की भाँति मृत्यु का वरदान-प्राप्त गांधीजी के बारे में जानकारी का अभाव और गलत जानकारी का प्रतिदिन तीन पारी के हिसाब से सत्र चला है। योगायोग तो ऐसा बना कि वधनिष्ठा की अमानवीय राजनीति करनेवाले तत्त्व और परिबल राष्ट्रजीवन के अधिकारी विद्वान् माने जा रहे हैं।

ऐसी स्थिति में 'मी नाथूराम गोडसे बोलतोय' नाटक को लेकर जो वाद-विवाद छिड़ा वह नये युग के सन्दर्भ में आवश्यक सफाई की दृष्टि से मानो एक मौका लेकर आया है। चुनीकाका ने इस मौके का रचनात्मक उपयोग किया। इक्कीसवीं सदी में जिनके सहारे हमें आगे बढ़ना है उनके व्यक्तित्व और कर्तृत्व के बारे में इससे प्रकाश प्राप्त होगा और जिन चीजों को त्यागकर ही हम आगे बढ़ पायेंगे उनके बारे में जानकारी प्राप्त हो सकेगी। ●

लेखक के दो शब्द

गांधीवालों की एक कमी है, अध्ययन नहीं करते, नीचे सिर करके और आँखें मूँदकर अपने काम में, केवल काम में रमे रहते हैं। उन्हीं में से और उन्हीं सा मैं भी एक हूँ। इसलिए जब प्रदीप दलवीकृत 'मी नाथूराम गोडसे बोलतोय' नाटक मंचित होने लगा और उसको लेकर बवण्डर-सा उठा तब हम सभी हड़बड़ा कर जगे। प्रकाश न० शाह, रमेश ओझा और जंगन फड़णीस का धन्यवाद कि इनके लेखों में से मेरे अपने पास भी उससे अधिक जानकारी प्राप्त हुई। उसमें भी विशेष रूप से भाई प्रकाश शाह के साथ बातचीत में से भी काफी जानकारी उपलब्ध हुई और इस प्रकार इस पुस्तिका के साकार होने की सम्भावना खड़ी हुई। दैनन्दिन कामों से समय निकाल कर इस पुस्तिका को तैयार किया। जिन-जिन मित्रों ने इस पुस्तिका में समाविष्ट तथ्यों के बारे में जाना उन मित्रों ने इसके प्रकाशन, प्रचार व प्रसार के लिए उत्साह जताया। इससे उत्साहित होकर हम गुजरात की जनता और अब हिन्दी भाषियों के हाथों में भी इस पुस्तिका को रखने का साहस कर पाये। आदरणीय श्री ठाकुरदास बंग ने इसका हिन्दी अनुवाद कराके हिन्दी जगत् में ले जाने की तत्परता जतायी। इतना ही नहीं, उन्होंने देश की तमाम भाषाओं में इसे प्रकाशित करने की उत्सुकता व्यक्त की। समय के अभाव के कारण हिन्दी अनुवाद श्री महादेव विद्रोही की सहायता लेकर हमने गुजरात में ही किया जिसकी वजह से कई कमियाँ रह गयी हैं जिसके लिए हम क्षमाप्रार्थी हैं।

इस पुस्तिका के द्वारा अगर सत्य की कुछ सेवा हो सकी तो हम धन्यता का अनुभव करेंगे। ●

— चुनीभाई वैद्य

गांधी की हत्या क्या सच, क्या झूठ

प्रश्न— क्या 'मी नाथूराम गोडसे बोलतोय' नाटक पर प्रतिबन्ध लगाना अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर कुठाराघात नहीं है? आपको यह कदम उचित लगता है? गोडसे के अनुसार उसने जो भी किया वह धार्मिक कृत्य था। उसके पीछे एक धार्मिक विचार था। जिस प्रकार कंस का वध, शिशुपाल का वध एक धर्मानुरूप कृत्य था, उसी प्रकार गांधी का वध भी एक धर्मसम्मत कृत्य है। उक्त नाटक में भी यही विचार प्रस्तुत किया गया है। विचार का जवाब विचार से देना चाहिए। प्रतिबन्ध लगाकर विचार के गले को घोंटने का काम हुआ है, ऐसा नहीं लगता?

उत्तर— अन्तिम बात को पहले लें। गोडसे के नाटक पर प्रतिबन्ध नहीं लगाना चाहिए, उसमें व्यक्त विचारों की अभिव्यक्ति अवरुद्ध नहीं किया जाना चाहिए—जब आप ऐसा कहते हैं तब मैं पूछ सकता हूँ कि गोडसे ने विचार का जवाब विचार से दिया था क्या? गोडसे को गांधीजी के विचारों को अवरुद्ध करने के लिए उनकी हत्या करने तक का अधिकार और उस अमानवीय हत्या को उचित सिद्ध करने एवं लोगों को भड़काने के लिए ही लिखे गये सरासर झूठ पर आधारित नाटक पर प्रतिबन्ध लगाया जाय तो मौलिक अधिकार का भंग लगे, ऐसा सोचने वाले की बुद्धि को क्या कहेंगे! गोडसे ने तो जो किया सो किया, आज उसे बदला नहीं जा सकता परन्तु उसने एक विश्ववंद्य महापुरुष के जीवन का दीप बुझा दिया। उस पाप-कृत्य को धार्मिक-कृत्य तथा उसके लिए दिये जा रहे तर्कों को धार्मिक-विचार

कहा जाय और साथ ही यह भी प्रचार किया जाय कि विचार का जवाब विचार से देना चाहिए तब Setan quotes scriptures शैतान शास्त्र सिखा रहा है—वाली कहावत याद आ जाती है।

अब अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता तथा उस पर प्रतिबन्ध की बात। संविधान की धारा १९(१) में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को मूलभूत स्वतंत्रता माना है। इसके साथ ही इसके दुरुपयोग को रोकने के लिए संविधान में धारा १९(२) का प्रावधान भी किया गया है। संविधान ने विरोधी विचार को कानूनी स्वरूप दिया है। इसीलिए तो विरोधी दल के नेता को कैबिनेट मंत्री का दर्जा एवं सुविधा दी जाती है। इसके बावजूद विरोध को निर्बाध अधिकार नहीं माना गया है। उसे खास बन्धनों की मर्यादा में बाँधा गया है। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का उपयोग करनेवाला विवेक खोकर समाज को हानि पहुँचाने का व्यवहार करे तो? तो समाज एवं सरकार को हस्तक्षेप करना पड़े। समाज के हस्तक्षेप को कानून को हाथ में लेना माना जायगा, यह कभी उचित साबित हो सकता है और कभी अनुचित भी। इसके कडुए और मीठे परिणाम दोनों पक्षों को भुगतने पड़ेंगे।

इस नाटक में तथ्यों को तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत किया गया है। सुनने में आया है कि सरकार (सेन्सर बोर्ड) द्वारा मंजूर आलेख में, मंचन के समय अनेक भड़कानेवाली बातों को जोड़ा गया। इसके लेखक कहते हैं, जब दर्शक इस नाटक को देखकर बाहर निकलें तब गांधीजी की प्रतिमाओं को तोड़ दें एवं गांधीजी के नाम के बोर्डों को फोड़ दें, तब वे इस नाटक को सफल मानेंगे। बात बिलकुल साफ है। भड़काने के उद्देश्य से ही इस नाटक को लिखा गया है एवं उसमें भी चबाने एवं दिखाने के दाँत अलग-अलग रखे गये हैं ताकि कानून के चंगुल से बचा जा सके। यह विवेक-बुद्धि की चूक नहीं है, सोच-समझकर की गयी बेइमानी है। ऐसे कृत्यों का बचाव करने एवं इसे न्यायोचित साबित करने वाले की बुद्धि को क्या कहेंगे! संक्षेप में यह एक मानसिक विकृति है। समाज को गलत हकीकत परोसकर गलत रास्ते पर ले जाने का आपराधिक प्रयत्न है।

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता में हमारा विश्वास है और, इसके लिए जेल भी

गये हैं, परन्तु स्वतंत्रता की शर्त है—सत्य का पालन एवं संयम। स्वतंत्रता का अर्थ स्वच्छन्दता नहीं है।

प्रश्न— गोडसे का बचावनामा एक व्यवस्थित विचार लगता है। अनेकों को वह स्वीकार्य लगता है। आपको क्या लगता है ?

उत्तर— गोडसे को गांधी की हत्या के बाद अपना बचावनामा तैयार करने के लिए काफी समय मिला। वह पढ़ा-लिखा तो था ही, इसलिए मिले हुए समय का उपयोग उसने अपने पाप-कृत्य को पुण्य का मुखौटा पहनाने में किया। शत प्रतिशत झूठ को उसने सत्य की तरह सजाने का प्रयत्न किया। परन्तु लोकतंत्र में हमने दण्डशक्ति सरकार को सौंपी है। दण्ड देने का अधिकार सरकार के सिवा किसी को नहीं, इसलिए हत्या हत्या है, उसका बचाव नहीं हो सकता।

अब रही बात इसके व्यवस्थित प्रस्तुति एवं प्रभावपूर्ण होने की। यह सम्भव है कि सामान्य लोग भावनावश भड़काने वाली बातों से चौंधिया कर निरुत्तर हो जायँ। न्यायालय में वकील शब्दजाल एवं वाक्-पटुता से बड़े-बड़े न्यायमूर्तियों को भुलावे में नहीं डाल देते ? सच को झूठ एवं झूठ को सच नहीं कर देते ? ऐसा गोडसे ने भी किया होगा। पर इससे वह अपने अपराध से बच नहीं सकता। एक तो उसने पाप किया और दूसरे उसके बचाव में झूठा वक्तव्य तैयार कर लाया।

प्रश्न— गोडसे ने कहा है कि उसने (१) गांधीजी द्वारा देश का विभाजन करने तथा इसे स्वीकार करने और (२) पाकिस्तान जिसने भारत के विरुद्ध युद्ध छेड़ रखा था, उसे उसके हिस्से के ५५ करोड़ रुपये भारत सरकार से दिलवाने के कारण गांधी की हत्या की। ये दोनों मुद्दे ऐसे थे कि किसी का भी खून खौल जाय। इस सम्बन्ध में आपको क्या लगता है ?

उत्तर— गांधीजी की हत्या के आठ प्रयास हुए। इसमें से तीन प्रयासों में नाथूराम गोडसे शामिल था और उन सभी प्रयासों के लिए पुणे के कुछ कट्टर रूढ़िवादी जिम्मेवार थे। हत्या के छह में से चार प्रयासों के समय देश के विभाजन एवं ५५ करोड़ रुपयों की बात स्वप्न में भी नहीं थी, फिर उस समय

हत्या के प्रयत्नों के क्या कारण थे? संक्षेप में कहें तो एक अंग्रेजी नज़ाबत याद आती है—Any Excuse serves an evil-doer पापी को पाप करने के लिए बहाना चाहिए। यह तो कभी भी और कहीं भी मिल सकता है। उसे हत्या करनी थी, जो भी बहाना हो। हत्या के बाकी प्रयत्न हुए तब क्या था? वही प्रवक्ता, वही पुलिस, वही न्यायाधीश और वही जल्लाद। नाथूराम को यह सब बनाया किसने?

हत्या के प्रयत्नों की लिखित घटना निम्न प्रकार है :

१. १९३४ में पुणे नगरपालिका द्वारा गांधीजी को सम्मानित करने के लिए आयोजित समारोह में जाते समय बम फेंका गया। भूल से बम अगली गाड़ी पर लगा पर गांधीजी पिछली गाड़ी में थे। इस घटना में नगरपालिका के मुख्य अधिकारी तथा दो पुलिसकर्मी सहित कुल सात लोग गम्भीर रूप से घायल हुए। इस हमले के समय विभाजन या ५५ करोड़ की बात कहाँ थी? बावजूद उसके यह प्राणघातक हमला किया गया।
२. जुलाई १९४४ में गांधीजी जब पंचगनी में थे तब एक दिन छुरा लेकर एक व्यक्ति गांधीजी के सामने आ गया। यह आदमी नाथूराम गोडसे था, ऐसी गवाही पुणे के सुरती लॉज के मालिक मणिशंकर पुरोहित ने दी थी। महाबलेश्वर के कांग्रेस के भू० पू० सांसद एवं सतारा जिला मध्यवर्ती बैंक के तत्कालीन अध्यक्ष श्री भि० दा० भिसारे गुरुजी ने नाथूराम के हाथ से छुरा छीन लिया था। गांधीजी ने उसके बाद तुरन्त ही नाथूराम गोडसे को मिलने के लिए बुलाया। परन्तु वह नहीं आया। जो लोग आज कहते हैं कि विचार का जवाब विचार से देना चाहिए, उन लोगों को इस घटना को याद करना चाहिए। गांधीजी तो मिलने आने वालों से हमेशा मिलते ही थे, बावजूद इसके नाथूराम नहीं मिला, यह एक हकीकत है। इस बार भी विभाजन या ५५ करोड़ रुपयों की बात नहीं थी। फिर हत्या का प्रयास क्यों?
३. तीसरा प्रयास सितम्बर १९४४ में हुआ। गांधीजी मुहम्मद अली जिन्ना से वार्ता के लिए बम्बई जाने वाले थे। उस अवसर का गलत फायदा उठाने

के लिए पुणे का एक गुप वर्धा गया था। इनमें एक व्यक्ति ग० ल० थत्ते के पास से पुलिस को छुरा मिला। थत्ते का कहना था, यह छुरा उसने उस गाड़ी के टायर को फोड़ने के लिए रखा था जिसमें गांधीजी जाने वाले थे। परन्तु गांधीजी के निजी सचिव श्री प्यारेलाल लिखते हैं कि उस दिन सबेरे उनके पास पुलिस अधिकारी डी०सी०पी० का फोन आया कि प्रदर्शनकारी अमंगलकारी घटना की तैयारी करके आये थे। गांधीजी का आग्रह था कि वे अकेले प्रदर्शनकारियों के साथ चलते-चलते जायेंगे एवं जब तक प्रदर्शनकारी उन्हें गाड़ी में बैठने की अनुमति नहीं देंगे तब तक उनके साथ ही चलते रहेंगे। परन्तु गांधीजी के निकलने का समय होने से पहले ही पुलिस ने प्रदर्शनकारियों को पकड़ लिया। इस समय विभाजन को स्वीकार करने या ५५ करोड़ रुपयों की बात कहाँ थी?

४. २९ जून, १९४६ को चौथा प्रयत्न किया गया। गांधीजी एक विशेष रेलगाड़ी द्वारा बम्बई से पुणे जा रहे थे। तब नेरल एवं कर्जत स्टेशन के बीच रेलवे लाइन पर बड़े-बड़े पत्थर रखकर गाड़ी को गिराने का षड्यंत्र किया गया। रात का समय होने के बावजूद ड्रायवर की सावधानी के कारण दुर्घटना नहीं हुई पर इंजिन को क्षति पहुँचने की बात स्वीकार की गयी है। इस बार पाकिस्तान के सुझाव को लेकर वार्ता चल रही थी। यह ठीक है पर गांधीजी विभाजन के विरोधी थे, यह भी उतना ही सत्य है। उन्होंने सार्वजनिक तौर पर कहा था कि विभाजन उनकी लाश पर होगा। विभाजन को टालने के लिए उन्होंने माउण्टबेटन को यहाँ तक सुझाया था कि प्रधानमंत्री का पद जिन्ना को सौंपकर अंग्रेज भारत से चले जायँ। यानी समझौता की ही बात थी। विभाजन को कतई स्वीकार नहीं ही किया गया था। और ५५ करोड़ की बात तो उस समय सपने में भी नहीं थी। फिर हत्या का प्रयास क्यों किया गया? इस घटना के बाद प्रार्थना-सभा में इसका उल्लेख करते हुए गांधीजी ने कहा, 'मैं सात बार इस प्रकार के प्रयासों से बच गया हूँ। मैं इस प्रकार मरने वाला भी नहीं हूँ, मैं तो १२५ वर्ष जीने वाला हूँ।' इस बात का उल्लेख नाथूराम गोडसे ने अपने मराठी सामयिक 'अग्रणी' में करते हुए लिखा—'परन्तु जीने

कौन देगा ?' यानी गांधीजी की हत्या का निर्णय उसने कब का कर लिया था।

५ एवं ६. मदनलाल पहवा ने जनवरी २० को बम फेंक कर हत्या का असफल प्रयास किया। ३० जनवरी को नाथूराम गोडसे ने गांधीजी की हत्या की। १२ जनवरी, १९४८ के बाद हुई इन घटनाओं के प्रसंग में विभाजन एवं ५५ करोड़ का मुद्दा उपस्थित हुआ था, इससे पहले यह कभी नहीं था।

इससे यह स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है कि हिन्दूवादी हत्या का षड्यंत्र वर्षों से करते आये थे। उन्हें तो अपने पाप को ढँकने के लिए बहाने की आवश्यकता थी। जिस वक्त जो मिला वही सही।

प्रश्न— एक आरोप यह भी है कि गांधीजी ने मुसलमानों का जरूरत से ज्यादा तुष्टिकरण किया जिसके कारण पाकिस्तान का निर्माण हुआ।

उत्तर— मनुष्य-मनुष्य के बीच का दुराव तीन चरणों में होता है। पहले में मन में अपने-पराये का भेद आता है। यह है दुराव का बीज। बाद में शाब्दिक बोलचाल होती है और अन्ततः इसके बढ़ जाने पर दुराव पैदा होता है। भारत को एक रखने का जितना आग्रह हिन्दूवादियों का था उतना ही गांधीजी एवं उनके साथी राष्ट्रवादी नेताओं का था। दोनों भारत की अखण्डता चाहते थे। परन्तु दोनों का तरीका अलग-अलग था। हिन्दूवादी मुसलमानों को कहते थे—तुम म्लेच्छ हो, यवन हो, हमारी और तुम्हारी कभी नहीं बन सकती। यह देश हमारा है। यह भारतवर्ष है, यहाँ तुम्हें पराया होने के बावजूद अलग नहीं होना है, हमारे साथ ही रहना है। इस देश के मालिक पहले हम हैं, इसलिए हम तुम्हें जैसे रखें वैसे ही रहना होगा। गांधीजी एवं उनके जैसे दूसरे राष्ट्रवादी समझते थे कि मुसलमानों को 'तुम पराये हो, पराये हो' कहते रहने से उनमें परायेपन की भावना पैदा होगी और इसे जितना दुहरायेंगे वह उतनी ही दृढ़ होगी। उनको साथ रखने के लिए केवल ऊपर-ऊपर से 'तुम हमारे हो' कहेंगे तो भी भूल होगी, सच्चे हृदय से अपनायेंगे तभी परायेपन की भावना खत्म होगी। अपनापन जागृत होगा। साथ-साथ काम करते-करते एवं साथ-साथ जीते-जीते अपनापन स्वभावगत

बनकर आत्मीयता बनेगी। समय के साथ-साथ घाव बढ़ता भी है और ठीक भी हांता है। हमें क्या करना है? घाव को बढ़ने देना है या ठीक होने देना है? घाव पर नमक छिड़कना है या मरहम लगाना है—यह हमें तय करना है। हिन्दूवादी नमक छिड़कने एवं गांधी तथा उनके साथी मरहम लगाने के लिए प्रयत्नशील थे।

इसमें हिन्दू समाज के जात-पाँत एवं ऊँच-नीच के भेदभावों ने भी काम किया। इस देश में मुसलमानों की जनसंख्या इतनी कैसे हो गयी? किसी समय हिन्दुओं में से कइयों ने खुद इस्लाम को ग्रहण किया। क्योंकि उन्हें हिन्दुओं की जात-पाँत, ऊँच-नीच वगैरह भेद खटकता था तथा अनेक देवी-देवताओं की पूजा गलत लगती थी। कई लोग ऐसे भी थे जिन्हें हिन्दू समाज नीच एवं अस्पृश्य मानता था। ऐसे लोग गये पर अपने साथ मन में कडुवाहट लेकर गये। अनेक ऐसे लोग भी थे जिन्हें जबरन मुसलमान बनाया गया। उनके लिए हिन्दू समाज के दरवाजे बन्द हो गये। आज भारत, पाकिस्तान एवं बांग्लादेश में जो मुसलमान हैं वे सभी किसी समय हिन्दू थे। बहुत कम अरबी मूल के होंगे। शायद दूँढ़ने पर भी नहीं मिलेंगे। यानी मूलतः ये हिन्दुओं का ही लहू है। परन्तु अद्वैतवादी हिन्दुओं ने अपने द्वैतवादी व्यवहार के कारण मुसलमानों में परायेपन की भावना को दृढ़ किया। हिन्दू समाज ऊँच-नीच तथा छुआछूत के विचारों के कारण उन्हें न तो अपने साथ बैठा सका, न ही अपने में वापस ले सका। इतिहास में इस बात के प्रमाण हैं कि कश्मीर के मुसलमान एक समय धर्मान्तरण कर हिन्दू बनना चाहते थे परन्तु काशी के पण्डितों ने लम्बी शास्त्रीय चर्चा के बाद इन्कार कर दिया। आज कश्मीर मुसलमान-बहुल होने के कारण, पाकिस्तान इस वास्तविकता का उपयोग कर रहा है।

परायेपन की यह भावना पीढ़ी-दर-पीढ़ी बढ़ती गयी। इसमें जिनका हित था ऐसे लोग खासकर उस समय के राजकर्ता अंग्रेजों ने इन बातों को अधिक भड़काया, शक्तिशाली बनाया, टिकाया एवं फैलाया। अन्ततः जिन्ना एवं उनके साथी आये और इस भावना का लाभ लिया। अंग्रेजों के सीधे सहयोग के कारण पाकिस्तान का निर्माण हुआ।

प्रश्न— गांधीजी पर मुसलमानों को अपनाने के लिए विशेष प्रयत्न करने का आक्षेप है। इस सम्बन्ध में आपको क्या कहना है ?

उत्तर— गांधीजी पर मुसलमानों के तुष्टिकरण का आक्षेप लगाया जाता है और कहा जाता है कि तुष्टिकरण की इस नीति के कारण ही विभाजन हुआ। परन्तु वास्तविकता यह है कि मुसलमानों को मुख्य धारा में लाने के प्रयास गांधीजी के भारत आने के पहले से चल रहे थे। उदाहरण के लिए १८५७ की स्वर्ण जयन्ती के अवसर पर, इंग्लैण्ड में बोलते हुए वीर सावरकर ने मुसलमानों का उल्लेख इन्द्रधनुष के एक रंग के रूप में किया था। १९०९ में अलग कौमी मतदाता परिषदों की रचना हुई। १९१६ के लखनऊ समझौते में मुसलमानों को जनसंख्या के अनुपात से अधिक प्रतिनिधित्व की बात को स्वीकारा गया। गांधीजी उस समय भारत जरूर आ गये थे, परन्तु लखनऊ समझौते में उनकी कोई भागीदारी नहीं थी। फिर कौन थे इसके सूत्रधार ? इसमें दो व्यक्ति मुख्य थे—लोकमान्य तिलक एवं मुहम्मद अली जिन्ना। लोकमान्य तिलक ने अपने निर्णय के समर्थन में कहा :

“कुछ महानुभावों का यह आरोप है कि हम हिन्दू अपने मुसलमान भाइयों को ज्यादा तवज्जो दे रहे हैं। मैं कहता हूँ कि यदि स्वशासन का अधिकार केवल मुस्लिम समुदाय को दिया जाय तो मुझे कोई एतराज नहीं होगा। राजपूतों को यह अधिकार मिले, तो परवाह नहीं। यदि यह अधिकार हिन्दुओं के सबसे पिछड़े वर्गों को भी दिया जाय तो मुझे कोई एतराज नहीं। हिन्दुस्तान के किसी भी समुदाय को यह अधिकार दे दिया जाय, हमें एतराज नहीं। मेरा यह बयान समूची भारतीय राष्ट्रीय भावना का प्रतिनिधित्व करता है। जब भी आप किसी तीसरी पार्टी से लड़ रहे होते हैं तो सब से जरूरी होती है, आपसी एकता, जातीय एकता, धार्मिक एकता और विभिन्न राजनीतिक विचारधाराओं की एकता।”

(भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, पृष्ठ १२०)

श्यामा प्रसाद मुखर्जी भी जब स्वतंत्र भारत के पहले मंत्रीमण्डल से अलग हुए तब हिन्दू महासभा में नहीं गये। क्योंकि उन्हें यह लगता था कि

स्वतंत्र भारत की जिस पार्टी में मुसलमान या अन्य कौमों का प्रवेश न हो तो वह किसी भी प्रकार उचित नहीं है। सुभाष बाबू ने उल्टे कांग्रेस की शिकायत भी की कि वह (कांग्रेस) मुसलमानों को पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं दे रही है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि मुसलमानों को साथ लेने की बात केवल गांधी की नहीं थी, हिन्दूवादी तथा दूसरे नेता भी गांधी के पूर्व इसके लिए सतत प्रयत्न करते रहे थे।

प्रश्न— पाकिस्तान के प्रस्ताव को कांग्रेस एवं गांधीजी ने ही स्वीकार किया। अगर वे इसे स्वीकार नहीं करते तो क्या पाकिस्तान बन सकता था ?

उत्तर— पाकिस्तान का प्रस्ताव तो काफी बाद में आया, परन्तु इसका सिद्धान्त काफी पहले आया था। मशहूर शायर इकबाल, जिनका गीत 'सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा' हम स्वतंत्रता-दिवस के अवसर पर खूब उत्साह एवं आनन्द से गाते हैं, उन्हीं जनाब इकबाल साहब ने १९३० में इलाहाबाद में हुए मुस्लिम लीग के सम्मेलन में बोलते हुए कहा— "मैं चाहता हूँ कि पंजाब, पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त, सिन्ध एवं बलुचिस्तान, ये सभी एक हो जायँ एवं एक राज्य बने। मुझे लगता है कि जहाँ तक पश्चिमोत्तर भारत का सम्बन्ध है वहाँ तक पश्चिमोत्तर मुस्लिम राज्य, चाहे वह ब्रिटिश साम्राज्य के अन्दर हो या बाहर, यही मुसलमानों का आखिरी भाग्य है।"

इकबाल साहब की इस बात पर जैसे मंजूरी की मुहर लगी १९३७ में। यह पढ़ें : "आज हिन्दुस्तान, एक प्राण, एकात्म राष्ट्र हो गया है, यह मानने की भूल करने से अपना काम नहीं चलेगा। उल्टे, इस देश में मुख्यतः हिन्दू एवं मुसलमान दोनों राष्ट्र है। इसे स्वीकार कर चलना चाहिए।"

क्या ऐसा नहीं लगता कि ये मुहम्मद अली जिन्ना के शब्द हैं ? इसमें दो राष्ट्र के सिद्धान्त का स्पष्ट स्वीकार है न ? स्वीकृति की मुहर किसने और कब लगायी ? जानना है ? तो जानिए १९३७ में अहमदाबाद में हिन्दू महासभा के अधिवेशन में अध्यक्ष पद से स्वीकृति की यह मुहर लगायी थी वीर सावरकर ने। और देखिए १९४३ में भी एक अवसर पर सावरकर ने कहा :

"मुझे जिन्ना के दो राष्ट्रों के सिद्धान्त को लेकर कोई आपत्ति नहीं है,

हम हिन्दू अपने में एक राष्ट्र हैं और यह ऐतिहासिक तथ्य है कि हिन्दू और मुस्लिम दोनों दो राष्ट्र हैं।”

(इण्डियन एन्युअल रजिस्टर १९४३ भाग-२, पृष्ठ-१०)

मुस्लिम लीग के अधिवेशन में जनाब इकबाल कहें कि उनका अलग राज्य (राष्ट्र) बनना चाहिए तभी झगड़े का अन्त आयेगा, और हिन्दू महासभा के मंच से वीर सावरकर कहें, ये प्रजा दो हैं, एक नहीं, ये दो राष्ट्र हैं। फिर विभाजन में शेष क्या रहा? पाकिस्तान के सिद्धान्त को पुष्ट किसने किया? पहले किसने स्वीकार किया था सो इस से साफ हो जाता है। और सावरकर ने सिर्फ यही वाक्य कहा हो ऐसा नहीं है, सम्पूर्ण हिन्दूवादी आन्दोलन की नींव ही बिलकुल हिन्दू-मुस्लिम अलगाववाद पर डाली गयी थी—१९२० के आसपास। देश के विभाजन के लिए मुस्लिम लीग जितनी जिम्मेवार है उतनी ही जिम्मेवार ये हिन्दूवादी प्रवृत्तियाँ हैं। इन दोनों ने मिलकर पाकिस्तान का निर्माण किया। एक ओर यह अलगाववादी आन्दोलन धीरे-धीरे पर ठोस रूप से आगे बढ़ रहा था तो दूसरी ओर कांग्रेस एवं गांधीजी हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए प्रयत्नशील थे। गांधीजी दक्षिण अफ्रीका के दिनों से ही अपनी प्रार्थना सभाओं में हिन्दू, बौद्ध, मुस्लिम, पारसी, ईसाई आदि धर्मों के श्लोकों/आयतों को गवाते एवं भजन दुहरवाते थे। हम सभी एक ही ईश्वर की सन्तान हैं यह बात घुटती और गले उतरती जाती थी। साबरमती आश्रम में कुरेशी साहब जैसे मुसलमान भी रहते थे। कौमी एकता समूचे स्वराज आन्दोलन का एक महत्त्वपूर्ण भाग था। इसके लिए सोच-समझकर प्रयत्न किये जाते थे—ये सभी बातें इतिहास में अंकित हैं। कांग्रेस में अखिल भारतीय स्तर के दर्जनों मुसलमान नेताओं के नाम गिनाये जा सकते हैं—डॉ० अन्सारी, हकीम अजमल खान, बदरुद्दीन तैयबजी, यहाँ तक कि खुद जिन्ना भी एक समय में कांग्रेस में थे। और इन सबों पर सिरमौर सदृश्य खान अब्दुल गफ्फार खान थे तो मौलाना अबुल कलाम आजाद कांग्रेस के अध्यक्ष थे। जबकि हिन्दूवादी आर० एस० एस०, हिन्दू महासभा वगैरह में हिन्दू-मुस्लिम एकता की बात तो जाने दें, मुसलमानों के विरुद्ध वैरभाव रखना एवं लड़ना एक मात्र एजेण्डा था। अब आप ही बतायें कि अलगाववाद का पोषण किसने किया?

प्रश्न— पर ऐसा कहा जाता है कि कांग्रेस एवं गांधीजी ने पाकिस्तान का समर्थन किया था। इसके बारे में आप का क्या कहना है ?

उत्तर— हिटलर के साथियों में गोबेल्स नाम का एक दबंग व्यक्ति था। उसका सिद्धान्त था, झूठी-से-झूठी बात को भी बार-बार दुहराते रहने से लोग उसे सच मानने लगेंगे। जिन हिन्दू राजनीतिज्ञों को किसी भी प्रकार अपनी राजनैतिक रोटी सेंक लेनी थी, चुनाव जीतने थे, उन्होंने एकदम सातत्य के साथ, व्यवस्थित एवं देशव्यापी स्तर पर इस झूठ को वर्षों तक चलाया। लोग गुमराह हुए और इसका फायदा इन लोगों ने उठाया। यह तो अब जगजाहिर है। नहीं तो देश की आजादी की लड़ाई में जिनका एक प्रतिशत भी योगदान नहीं था वैसे लोग आज राज्यों तथा देश के उच्चासनों पर हैं, इसका क्या कारण है ? लोगों को दी गयी गलत जानकारी।

जहाँ तक कांग्रेस एवं गांधीजी का सम्बन्ध है, अनेक घटनाएँ इतिहास के पृष्ठों में अंकित हैं। एक प्रसंग को देखें— लॉर्ड वावेल ने जिन्ना को मुसलमानों के प्रतिनिधि के रूप में तथा गांधीजी को हिन्दुओं के प्रतिनिधि के रूप में वार्ता के लिए बुलाया। गांधीजी उनकी चाल को समझ गये। उन्होंने कहा, जिन्ना को मुस्लिम लीग (सभी मुसलमानों के नहीं) के प्रतिनिधि के रूप में एवं मौलाना अबुल कलाम आजाद को कांग्रेस के प्रतिनिधि के रूप में बुलाकर बात करें। स्थिति यह हो गयी कि वावेल के बाँयें भी मुसलमान और दाँयें भी मुसलमान। दो कौम, दो राष्ट्र की बात कांग्रेस ने काफी बाद तक नहीं मानी। और गांधीजी की तो बात ही छोड़ दें। उन्होंने तो यहाँ तक कहा कि पाकिस्तान की स्थापना मेरी लाश पर चलकर हो, तो भले हो।

परन्तु जिन्ना भारत के मुसलमानों को गुमराह करने में कामयाब हो गये। दूसरी ओर बड़ी संख्या में राष्ट्रवादी मुसलमान भी थे। वीरजी अहमद किदवई, भोला आज़मी, डॉ० जाकिर हुसेन साहब तथा प्रो० अब्दुल बारी और इन सबसे ऊपर खान अब्दुल गफ्फार खान थे जो पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त में पाकिस्तान की रचना का विरोध कर रहे थे। परन्तु जिन्ना एवं उनके साथियों के भड़काने से पूरे भारत में अवर्णनीय खूनखराबी एवं तनाव हुआ। दूसरी ओर अंग्रेजों की नीति ही विभाजन करने की थी। लॉर्ड वावेल के आदेश से

उस समय पाकिस्तान की माँग के सम्बन्ध में मुस्लिमों का मतदान करवाया गया। उस समय आज की भाँति वयस्क मताधिकार तो था नहीं कुछ पढ़े-लिखे, आयकर चुकाने वाले आदि लोगों को ही मताधिकार प्राप्त था। ९० प्रतिशत मतदान पाकिस्तान की माँग के समर्थन में हुआ। ब्रिटिश सरकार मतदान से होनेवाले निर्णयों को मानती थी, इसलिए वह इस निर्णय पर अमल करने के लिए मजबूर थी।

दूसरी ओर यह चिन्ता थी कि राष्ट्रीय स्तर पर यदि कोई समझौता नहीं होता है तो वह अंग्रेजों को सत्ता न छोड़ने का कारण दे देगा। आजादी टलती दिखायी दे रही थी। इधर माउण्टबेटन ने तो स्पष्ट चेतावनी दे दी थी कि निर्धारित समय में यदि कोई समझौता नहीं होता है तो अंग्रेज जैसी स्थिति है वैसी ही छोड़कर चले जायेंगे। इसका अर्थ यह था कि छोटे-बड़े मिल कर सैकड़ों रजवाड़े आजाद हो जायेंगे। जो क्षेत्र ब्रिटिश शासन के अधीन थे वे भी आजाद हो जायेंगे। मार-काट केवल हिन्दू-मुसलमानों के बीच ही नहीं थी, रजवाड़े भी एक-दूसरे पर एवं ब्रिटिश शासन वाले भाग पर आक्रमण कर सकते थे। इस प्रकार एक भयंकर अराजकता उत्पन्न होने की सम्भावना राष्ट्रीय नेताओं के सामने उपस्थित हो गयी थी। करें क्या? ऐसी परिस्थिति में कांग्रेस अर्धम् त्यजति पण्डिताः के न्याय को मान गयी।

गांधीजी को लगा कि उनके साथ धोखा हुआ है। परन्तु आघात से मर्माहत होने के बाद समझ में आया कि 'वे' यानी कौन? एक व्यक्ति की इच्छा का महत्त्व कितना? हतोत्साहित होकर वे 'हे भगवान, अब मुझे उठा लो' की भाषा बोलने लगे। बिलकुल टूट पड़ने की स्थिति में जितना सूझा उतना शान्ति-स्थापना का काम करते रहे। सेवाग्राम जा रही एक बहन ने आश्रमवासियों के लिए सन्देश माँगा तो कहा—“....हमेशा मेरी ओर ही देखते रहना आप के लिए उचित नहीं है। ईश्वर से अब मेरी प्रार्थना है कि मुझे उठा ले।” दूसरे एक मित्र को उन्होंने लिखा, “मैं अब कभी भी सेवाग्राम आ पाऊँगा, यह सम्भव नहीं लगता है।”

गांधीजी के मन को विभाजन का स्वीकार करना कठिन हो रहा था। उन्होंने तो अन्त में यहाँ तक सुझाया कि अंग्रेज जिन्ना को प्रधानमंत्री बनाकर

चले जायँ। पर माउण्टबेटन तथा उनकी बातों से प्रभावित कांग्रेस को गांधीजी की बात अब अव्यावहारिक लगने लगी थी।

अन्ततः कांग्रेस ने गांधीजी को छोड़कर निर्णय लिया—पाकिस्तान बनना अपरिहार्य ही हो तो बने। इसके कारण ही पण्डित नेहरू एवं सरदार पटेल ने माउण्टबेटन वगैरह के साथ चर्चा करके अपनी सम्मति दे देने के बाद ही गांधीजी को इसकी खबर दी। गहरे अपमान की भावना अनुभव करते हुए भी वे एक वीर एवं खेल-भावना वाले मित्र की तरह अपने साथियों के साथ खड़े रहे। वे यह समझ गये थे कि देश में जो परिस्थिति है उसमें कांग्रेस की शक्ति को तोड़ देने से अकल्पनीय हानि होगी क्योंकि उस समय देश में ऐसी शक्ति थी नहीं जो देश को चला सके।

प्रश्न— तो फिर उन्होंने विभाजन को रोकने के लिए आमरण अनशन क्यों नहीं किया ? हिन्दूवादियों का आक्षेप ही यही है कि उन्होंने इस मुद्दे पर आमरण अनशन नहीं किया और ५५ करोड़ के मुद्दे पर अनशन क्यों किया ?

उत्तर— गांधीजी ने खुद इसका जबाब दिया है। उनके पास आये एक पत्र के सन्दर्भ में चर्चा करते हुए उन्होंने कहा था :

“मैं यानी कौन ? एक व्यक्ति के रूप में मेरा कोई मूल्य नहीं है। जिन लोगों का प्रतिनिधि बनकर मैं बोलता था, वे लोग मुझे छोड़कर चले गये हैं। उनको मेरी बात जँचती नहीं है। उन्हें विभाजन स्वीकार है। हो सकता है यह उनकी मजबूरी हो। लेकिन मुझे आज भी अपनी पद्धति पर अडिग श्रद्धा है। लेकिन मैं किसके लिए लड़ूँ जबकि वे सब लोग, जिनका मैं अब तक प्रतिनिधित्व करता था, और जिनके लिए लड़ता था, उन्हें ही विभाजन स्वीकार है ? और, जिनका अब मेरे प्रति विश्वास नहीं रहा ? पूरा देश मृत्यु और हिंसा का ताण्डव कर रहा ! मैत्री, भाईचारा, शान्ति और प्रेम की अपील से वे खुश नहीं हैं। हिन्दू मुसलमानों को देश से बाहर खदेड़ देना चाहते हैं। जब पूरी परिस्थिति बदल चुकी है, तब मैं किनके समर्थन से अखण्ड और अविभाजित राष्ट्र की लड़ाई लड़ूँ ? विभाजन का इन्कार करना कोई छोटी-मोटी बात नहीं है।”

भौगोलिक टुकड़े हुए, पर दिल तो जोड़े जा सकते थे। वे खान अब्दुल गफ्फार खान से मिलने तथा जिन्ना ने अल्पसंख्यकों से जो वायदे किये थे उनका अमल किस प्रकार हो रहा है उसे प्रत्यक्ष देखने के लिए पाकिस्तान जाने की इच्छा अनेक बार व्यक्त कर चुके थे। उन्होंने यहाँ तक कहा था : “मैं पाकिस्तान को अपना ही देश समझता हूँ, इसलिए मुझे वीसा लेने की जरूरत नहीं होगी।”

अगर गांधीजी जिन्दा होते तो दुनिया देखती कि जिस प्रकार उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में प्रतिबन्ध का भंग कर नाताल की सीमा में प्रवेश किया था, उसी प्रकार सत्याग्रहपूर्वक पाकिस्तान की सीमा में भी प्रवेश करते। विभाजन को इन्कार करने का उनका यह सत्याग्रही तरीका था। उनमें खुद के साथ धोखा होने की भावना जरूर आयी पर जिन साथियों ने उन्हें जिन्दगी भर साथ दिया था उन साथियों की मजबूरी भी वे समझते थे। जो हुआ उसे उन्होंने सीधे-साधे चुनौती नहीं दी, परन्तु उनका मन इसे स्वीकार नहीं कर रहा था, यह तथ्य उपरोक्त बातों से स्पष्ट हो जाता है।

एक दूसरी घटना भी हुई। विभाजन के निर्णय के विरोध में कई लोगों ने लड़ाई के लिए गांधीजी का साथ देने की तैयारी दिखायी थी। कौन थे वे लोग? ये वे लोग थे जो आजतक गांधीजी को गाली देते थे, ये वे लोग थे जो देश की भौगोलिक एकता तो बनाये रखना चाहते थे, पर उन्हें देश की जनता को तो विभाजित करना ही था। ये लोग हिन्दू एवं मुसलमान दो कौम, दो राष्ट्र वगैरह की भाषा बोलते थे। वे मानते थे कि यहाँ मुसलमानों को दोगम दर्जे का नागरिक बनकर ही रहना चाहिए। हिन्दू धर्म तो अद्वैत की बात करता है, पूरा विश्व एक परिवार-वसुधैव कुटुम्बकम्—की बात करता है, पर उसी के नाम से लड़ने वाले देश की भौगोलिक अखण्डता की बात जरूर करते थे, लेकिन उन्हें दिलों के टुकड़े तो करने ही थे। पुरानी दुश्मनी का बदला जो लेना था! हिन्दू-मुसलमान इन दो कौमों का विभाजन नहीं होता तो इनका धन्धा ही बन्द हो जाता ! अब, ऐसे लोगों का साथ लेना गांधीजी कैसे स्वीकार कर सकते थे?

सन् १९४६-४७-४८ के दरम्यान उनके जो भी अनशन हुए वे हिन्दू-मुस्लिम भाईचारे को बढ़ाने के लिए ही हुए थे। भाईचारा मजबूत हो, दिल जुड़ें, तो विभाजन की बात टल सकती है—एक सत्याग्रही इसके अलावा और क्या सोच सकता है? इतना होते हुए भी कोई यह कह सकता है कि उनको विभाजन रोकने के लिए अनशन करना चाहिए था। यानी गांधीजी को ऐसा कहने वाले की बुद्धि के अनुसार ही चलना चाहिए था। खुद कुछ करना नहीं, दूसरों से अपेक्षा रखना और वह अपेक्षा पूरी न हो तो दोषारोपण करना, यह कैसी बात है?

एक दूसरा सवाल जिसका जवाब हम चाहेंगे, और जो अन्य लोगों को भी समझ में न आनेवाला सवाल है। वह यह कि, ये बातें सिर्फ हिन्दूवादी ही करते हैं और साथ-साथ यह भी मानते हैं कि गांधी देशद्रोही, हिन्दूद्रोही थे, उनका वध जरूरी था। तो फिर गांधीजी से यह अपेक्षा कैसे रखते हैं कि उनकी लड़ाई

गांधीजी को लड़नी चाहिए थी ? क्या सावरकर, गोलवलकर, मुखर्जी, भोपटकर, मुंजे, खरे जैसे उनके हिन्दूवादी नेता नहीं थे, जो उनकी अपेक्षा पूरी करते ? सत्य तो यह है कि ये लोग अच्छी तरह जानते थे कि उनके नेताओं में से एकाध को छोड़कर किसी ने भी आजादी की लड़ाई में कोई बलिदान नहीं किया, कष्ट नहीं भोगा, जनता इनका नाम तक नहीं जानती। अतः ये अनशन करेंगे तो जनता पर उसका कोई असर होने वाला नहीं है। यह शक्ति तो अकेले गांधीजी की थी। गांधीजी भारत आये तब कई हिन्दूवादी नेता सक्रिय थे। उन में सावरकर तो उम्र में भी गांधीजी से १० वर्ष छोटे युवक थे। दूसरे भी कई नेता थे। ये लोग गांधीजी की तरह अपनी हैसियत क्यों नहीं बना पाये ? इसलिए कि उनकी बातें ऐसी नहीं थीं कि जनता को स्पर्श कर सकें। इसके बावजूद झूठी और पुरानी बातें सुनाकर लोगों के दिलोदिमाग में द्वेष एवं कलह के बीज बोने तथा हिंसा भड़काने के प्रयत्नों के अतिरिक्त उनके पास दूसरा कोई भी कार्यक्रम नहीं था।

प्रश्न— ५५ करोड़ रुपये वाली बात अभी तक साफ नहीं हुई। इस सम्बन्ध में आपका क्या कहना है ? क्या इसमें गांधीजी का पाकिस्तान-पक्षधर यानी कि मुस्लिम-पक्षधर दृष्टिकोण नहीं दिखायी देता ?

उत्तर—रुपयों की बात को लेकर गांधीजी को मुसलमानों का पक्षपाती मानना अनुचित है। गांधीजी युगद्रष्टा थे। उनकी दृष्टि व्यापक और जागतिक थी। देश के विभाजन के साथ ही, अंग्रेजों की मध्यस्थता में देश की चल-अचल सम्पत्ति का भी बँटवारा हुआ था। अतः स्वाभाविक तौर पर माउण्टबेटन का यह आग्रह था कि बँटवारे के समय दिये गये वचन का हमें पालन करना चाहिए। इस सम्बन्ध में गांधीजी की उनसे ६ और १२ जनवरी को बात भी हुई थी। लेकिन गांधीजी ने इस मुद्दे पर उपवास का संकल्प नहीं किया था। गांधीजी जब कलकत्ता से पंजाब जाने के लिए ९ सितम्बर को दिल्ली पहुँचे, तो उन्होंने स्वयं देखा कि जिन्दादिल दिल्ली किस कदर मुर्दों का शहर बन चुका है। तत्काल ही उन्होंने फैसला कर लिया कि अब दिल्ली में रहकर ही 'करना या मरना' होगा। उपवास शुरू करने से एक दिन पूर्व उन्होंने कहा था कि पिछले तीन दिनों से उन्हें अपने अन्दर से कुछ आवाज सुनाई दे रही थी, लेकिन वे किसी फैसले पर नहीं पहुँच पा रहे थे। अन्ततः व्यथा और वेदना की गहरायी में से ही उपवास शुरू करने का निश्चय निकला। यह भी समझना चाहिए कि गांधीजी इस बात के पक्के हिमायती थे कि ५५ करोड़ रुपयों की अदायगी भारत सरकार की नैतिक जिम्मेदारी है। क्या यह कभी सम्भव था कि जिस व्यक्ति का

सम्पूर्ण जीवन 'सत्य' के लिए समर्पित हो, और जिसने 'जैसे को तैसा' की नीति को त्याज्य माना हो, छल-कपट के जवाब में भी जिसने सत्याचरण और भलाई के सिद्धान्तों का ही पालन किया हो, वह कसौटी के वक्त भला अपने सत्य-पथ से डिग जाता? ज्यों ही गांधीजी ने उपवास की घोषणा की, डॉ० सुशीला नैयर, जो दिन-रात गांधीजी की सेवा में जुटी रहती थीं, 'यह खबर लेकर मेरे पास दौड़ी आयी—गांधीजी ने निश्चय किया है कि अगर दिल्ली का पागलपन बन्द नहीं हुआ, तो वे आमरण उपवास करेंगे।'^{१३}

पचपन करोड़ रुपयों का इसमें कोई उल्लेख नहीं था। गहरी वेदना के क्षणों में भी पचपन करोड़ रुपये का जिक्र उनकी जुबान पर नहीं आया। जाहिर है कि उपवास का वह मुद्दा था ही नहीं। उपवास के सम्बन्ध में दिये गये गांधीजी के किसी बयान में इस मुद्दे का उल्लेख नहीं मिलता।

इसलिए यह कहना सर्वथा गलत है कि उन्होंने पचपन करोड़ रुपयों के लिए उपवास किया। यदि यह मुद्दा उनके उपवास का कारण होता तो अवश्य ही उपवास शुरू करने से पहले उन्होंने इसे उपवास समाप्त करने की शर्त के रूप में सबके सामने रखा होता। लेकिन इस आशय का एक शब्द भी उनके बयानों में नहीं मिलता।

दूसरी बात कि उपवास के तीसरे दिन केन्द्र सरकार ने पाकिस्तान को पचपन करोड़ रुपये देने की घोषणा कर दी थी, गांधीजी के पेशाब में 'एसिटोन' की मात्रा बढ़ गयी थी, जिसके कारण उनके शरीर के तन्तुओं का बिखरना प्रारम्भ हो गया था। रक्त-नलियों में जहरीले तत्त्व भरने लगे थे, जिसके परिणाम घातक हो सकते थे। लेकिन इन दो ठोस कारणों के बावजूद भी उन्होंने उपवास नहीं तोड़ा। उन्होंने उपवास तब समाप्त किया जब राजेन्द्र बांबू की अध्यक्षता में बनी शान्ति-समिति ने शान्ति-स्थापना के लिए चार स्तरों पर कार्रवाई करने का विश्वास उन्हें दिलाया। (देखें परिशिष्ट-५) उसमें ५५ करोड़ रुपयों के भुगतान की कोई बात नहीं थी।)

भारत सरकार की, पाकिस्तान को ५५ करोड़ रुपयों देने की घोषणा में भी कहीं यह उल्लेख नहीं है कि यह निर्णय महात्मा गांधी की माँग पर लिया गया है। (देखें परिशिष्ट-४)

एक प्रश्न के जवाब में गांधीजी ने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि उनका उपवास भारत सरकार के गृहमंत्री की किसी कार्रवाई का विरोध करने के लिए नहीं है। यह उपवास भारत के हिन्दुओं और सिक्खों तथा पाकिस्तान के

मुसलमानों द्वारा किये गये पाशविक कृत्यों के खिलाफ है। यह उपवास भारत और पाकिस्तान के अल्पसंख्यकों की रक्षा के लिए है। गांधीजी के प्रार्थना प्रवचनों में इन सारी बातों का पूरा खुलासा किया गया है। (देखें-परिशिष्ट १, २, ३)

गांधीजी के अन्दर इस बात की असीम पीड़ा थी कि भारत ने शान्ति और अहिंसा के रास्ते आजादी हासिल की, उसके बाद वह पूरी दुनिया को एक नयी और सही दिशा दे सकता था, लेकिन आज वह टुकड़ों में विभाजित होकर अपने ही भाइयों के खून की होली खेल रहा है, लोग अपनी ही माँ-बहनों के साथ दुष्कृत्य कर रहे हैं, बलात्कार कर रहे हैं। भारत और पाकिस्तान, दोनों जगहों की यह स्थिति उनके लिए असह्य थी। उनके सामने दोनों देशों के बहशीपने को रोकने के लिए उपवास का ही एक अन्तिम उपाय शेष रह गया था।

सबसे अधिक, उन्हें इस बात की सम्भावना नजर आती थी कि भारत के उदार दृष्टिकोण का दुनिया पर असर होगा। साथ ही, वे अपने अन्तर की गहरायी से यह उम्मीद करते थे कि भारत और पाकिस्तान किसी दिन फिर से एक होंगे। और नहीं, तो कम-से-कम अच्छे पड़ोसियों की तरह दोनों शान्ति, प्रेम और भाईचारे के साथ रहने की स्थिति में तो आ जायेंगे!

गांधीजी का उपवास गहरी मानवीय प्रेरणा से अनुप्राणित था और वह असफल नहीं हुआ। उसका व्यापक असर हुआ। कुछ उदाहरण प्रस्तुत है:

बरेली के एक मौलवी ने महात्मा गांधी को सम्बोधित करते हुए पत्र लिखा और अपने अनुयायियों के नाम फतवा निकाला, जो विशेष महत्त्व का था: "पाकिस्तान या हिन्दुस्तान में मुसलमानों का आपसे बड़ा कोई दोस्त नहीं है।... हाल के कराची और गुजरात (पाकिस्तान) के जुल्मों, बेगुनाह औरतों और बच्चों के कत्ल, जबरन धर्म बदलने और औरतों को भगा ले जाने की घटनाओं पर आपके साथ मेरा दिल भी खूब रोता है। ये अल्लाह के सामने किये गये ऐसे गुनाह हैं, जिनकी कोई माफी नहीं। पाकिस्तान सरकार यह जान ले। अल्लाह के खलक के खिलाफ किये जानेवाले ऐसे भयंकर गुनाहों की बुनियाद पर इस्लामी राज्य कभी कायम हो ही नहीं सकता। मैं पाकिस्तान के अपने अनुयायियों को हुक्म देता हूँ और पाकिस्तान के मुसलमानों व सरकार से अपील करता हूँ कि वे इस्लाम से कोई सम्बन्ध न रखनेवाले इन शर्मनाक बुरे कामों को बन्द करें और अपनी इन बुरी करतूतों पर तहेदिल से पछतायें। मेरे अनुयायियों और हिन्दुस्तान के मुसलमानों को मेरा यह हुक्म है.... (कि) वे आखिर तक आपके और संघ

की सरकार के वफादार रहें.... और ऐसी कार्रवाई के खिलाफ आम लोगों में नफरत पैदा करने के लिए पाकिस्तान के अपने हममजहबों के बुरे कामों की बेलाग और जोरदार शब्दों में निन्दा करें L... मुसलमानों के लिए यह समझने का समय आ गया है कि संघ के लिए उनकी सच्ची वफादारी और उनके नेताओं का आत्मविश्वास ही एकमात्र ऐसा संरक्षण है जो उन्हें बचा सकता है। पाकिस्तान की तरफ रहनुमाई और सहायता के लिए देखते रहने की छिपी इच्छा उनका नाश कर देगी। मेहरबानी करके अपना उपवास तोड़ दीजिये।'¹²

पाकिस्तान में भी उपवास का असर दिखायी दिया। पाकिस्तान सरकार के पुनर्वास-मंत्री राजा गजनफर अली खान ने एक अखबारी मुलाकात में ऐसी घोषणा की : "हाल के महीनों में भारत और पाकिस्तान दोनों में जो भयंकर नैतिक पतन सामने आया है उसका कोई कड़ा उपाय होना बहुत जरूरी था और महात्मा गांधी ने इन परिस्थितियों के खिलाफ उग्र रूप में अपना विरोध प्रकट किया है।'¹³

पश्चिम पंजाब (पाकिस्तान) की विधान-सभा के प्रांगण में सदस्यों ने अपने भाषणों के दौरान गांधीजी के उपवास का भावपूर्ण उल्लेख किया। मलिक फीरोज खाँ नून ने कहा : "धर्म के संस्थापकों को छोड़कर संसार के किसी देश ने महात्मा गांधी से बड़ा आदमी पैदा नहीं किया।" वित्तमंत्री मिया मुमताज खाँ दौलताना ने कहा : "हमारा सर्वप्रथम कर्तव्य उन भावनाओं की कदर करना है, जो महात्मा गांधी के उपवास से मुसलमानों के लिए प्रकट होती है। इससे जाहिर होता है कि भारत में कम-से-कम एक आदमी तो ऐसा है, जो हिन्दू-मुस्लिम-एकता के लिए अपनी जान तक कुर्बान करने को तैयार है L... मैं इस सदन के प्रांगण से महात्मा गांधी को यह विश्वास दिलाता हूँ कि अल्पसंख्यकों की रक्षा के लिए उनकी जो भावनाएँ हैं उनमें हम पूरी तरह उनके साथ हैं।" मुख्यमंत्री ममतोत खान ने अपनी ओर से और अपने साथियों की ओर से बोलते हुए 'एक पवित्र कार्य को आगे बढ़ाने के लिए महात्मा गांधी के महान् कदम की गहरी प्रशंसा और सच्ची कदर की, साथ ही गहरी चिन्ता की भावना भी' व्यक्त की और यह भी कहा कि 'गांधीजी की कीमती जिन्दगी को बचाने के लिए मदद करने में यह प्रान्त कोई प्रयत्न उठा नहीं रखेगा।'¹⁴

भारत-स्थित पाकिस्तान के उच्चायुक्त जाहिद हुसैन का सन्देश इस प्रकार

था : "आज भारत के लोग...जिसमें मैं पाकिस्तान को शामिल मानता हूँ...द्वेष और संघर्ष से उत्पन्न होनेवाले अकथनीय दुखों और संकटों से पीड़ित हैं। आज देश पर जो अभूतपूर्व संकट छाया हुआ है, उसमें सबकी आँखें महात्मा गांधी की तरफ लगी हुई हैं।...भारत कई प्रकार से मानव-जाति के भविष्य की कुँजी है और हम सब आशा और प्रार्थना करते हैं कि महात्मा गांधी के आदर्शों से प्रेरित होकर वह अपना पार्ट सच्चे और सुन्दर ढंग से अदा करे।"¹⁴

उपवास के कुछ सार्थक परिणाम अन्य प्रकार से भी सामने आने लगे थे। गांधीजी के सचिव श्री प्यारेलाल ने लिखा है : 'लगभग इसी समय उत्तरप्रदेश के चार मुसलमानों का एक शिष्ट-मण्डल, जो पश्चिम पंजाब में शान्ति-मिशन पर गया था, लौट आया और उसने गांधीजी को एक रिपोर्ट दी। उसमें उन्होंने यह विचार प्रकट किया कि अब हिन्दू लाहौर लौट सकते हैं और वहाँ सुरक्षित रूप में रह सकते हैं, परन्तु सिक्खों को समय की प्रतीक्षा करनी होगी।' उन्होंने यह भी कहा : 'उत्तरप्रदेश के शान्ति-मिशन के सदस्य अपने गैर-मुस्लिम भाइयों को विश्वास दिलाते हैं कि जो लोग अपने घरों को लौट जाना चाहें, उनके साथ वे खुद जायेंगे और वहाँ उनके पुनर्वास में मदद करेंगे। वे अपने प्राणों की बाजी लगाकर उनकी रक्षा करेंगे और जब तक उन्हें सलामती अनुभव नहीं होगा तब तक उन्हें छोड़कर वे नहीं आयेंगे।'¹⁵

इस पार के हिन्दू धर्मांधों और उस पार के मुस्लिम धर्मांधों पर उन्माद छा गया था। वे खून के प्यासे हो रहे थे। वे अन्य धर्मावलम्बियों के खून की होली खेलना चाहते थे। इसके लिए वे जनता को भड़काते रहते थे। इन धार्मिक कट्टरपंथियों द्वारा बहकायी गयी जनता भी अपनी नजरों के सामने हो रही घटनाओं तथा सुनी-सुनायी सच्ची-झूठी बातों से प्रभावित होकर उन्मादपूर्ण आचरण करने लगी थी।

गांधीजी दो देशों को एक करने, कम-से-कम एकमत और एकमन करने तथा अखण्ड भारत के सपने को फिर साकार करने के लिए जीवन के अन्तिम दिनों तक प्रयत्न करते रहे। उन्हें दुनिया को यह सिद्ध करके दिखाना था कि प्रेम, अहिंसा, सत्य एवं सद्गुणों के आचरण निरपेक्ष होते हैं, इसमें सौदेबाजी नहीं होती। गांधीजी खुद अन्त तक यानी ३० जनवरी तक इस बात को समझाते रहे और इस पथ पर चलते हुए ही वे शहीद भी हुए।

प्रश्न— इसके पूर्व आपने कहा कि गांधीजी की हत्या के पीछे पुणे के

कुछ नागरिक थे। इसके क्या कारण थे? इसे जरा साफ करें। दूसरे, हम यह भी जानना चाहते हैं कि लोकमान्य तिलक और वीर सावरकर प्रभावकारी क्यों नहीं हो पाये? आपने कहा वे लोग गांधीजी की भाँति आन्दोलन नहीं खड़ा कर सके। इसे भी समझायें।

उत्तर— महापुरुषों की आपस में तुलना करना उचित नहीं होता। जिन इतिहास-पुरुषों का आपने जिक्र किया है उनके पराक्रम और देशभक्ति से कोई इन्कार नहीं कर सकता। आजादी की लड़ाई में इन लोगों की महत्वपूर्ण भूमिका अवश्य थी। इसके लिए देश उनका ऋणी था और हमेशा रहेगा। लेकिन उनकी और गांधीजी की पद्धति में मूलभूत भिन्नताएँ थीं। अहिंसा और सत्य का युग विज्ञान के पंख लगाकर आ रहा था। नये सन्दर्भ में नये व्यवहार, नये चिन्तन, नयी मानसिकता की आवश्यकता थी।

तिलक महाराज और सावरकरजी को आजादी के संघर्ष में शामिल होने के कारण अंग्रेज सरकार ने गिरफ्तार किया। उन पर सरकार के खिलाफ विद्रोह का आरोप लगाया गया। इन लोगों ने इस आरोप को अस्वीकार किया और अपने बचाव की कोशिश की। लेकिन वे इसमें असफल रहे और उन्हें कारावास की सजा हुई। गांधीजी पर भी इसी प्रकार के राजद्रोह का आरोप लगाया गया। गांधीजी ने कोर्ट में उनपर लगाये गये आरोपों को स्वीकार किया। इतना ही नहीं, उन्होंने अदालत से यह भी कहा कि अगर आप इसे राजद्रोह कहते हैं तो मैं इसे स्वीकार करता हूँ। अगर आप मुझे छोड़ देंगे तो मैं फिर से यही करूँगा। अतः आप मुझे जो दण्ड देना चाहते हैं, अवश्य दें। उस समय जो अंग्रेज न्यायमूर्ति थे वे गांधीजी के चरित्र से अत्यन्त प्रभावित हुए। उन्होंने उनको 'संत' कहकर आदर व्यक्त किया और जितनी अधिकतम सजा दे सकते थे उतनी—छह वर्ष के कारावास की—सजा भी दी। लेकिन अपने इस फैसले को लेकर वे अत्यन्त व्यथित भी हुए। ऐसा क्यों हुआ?

क्योंकि, मुझे लगता है नया युग अपने साथ नये प्रश्न लेकर आया था, जिन्हें सुलझाने के लिए नये चिन्तन और नये दृष्टिकोण की आवश्यकता थी। पुराने तरीकों से काम चलनेवाला नहीं था। 'जैसे को तैसा' की व्यवहार-नीति कालबाह्य हो चुकी थी। कूटनीति आदि के दिन भी लद गये थे। विज्ञान ने सम्प्रदायों की बुनियाद को हिला दिया था। समाज के चित्त में नये-नये सवाल पैदा होने लगे थे। केवल हिन्दुत्व की बात अब अप्रासंगिक हो गयी थी। इस माहौल में गांधीजी आये। उनकी ईश्वर-परायणता एवं धर्म-परायणता किसी भी हिन्दू से

कम नहीं थी। वे अपने को आग्रहपूर्वक सनातनी हिन्दू कहते थे। लेकिन उनका सभी धर्मों के प्रति समान आदर और पूज्यभाव था। उनकी ये बातें व्यापक धर्म-भावनावाले हिन्दू-मानस को पसन्द थीं। उनकी ईश्वर-परायणता और ईश्वरार्पण की भावना को आम आदमी सहज ही समझ जाता था। बैरिस्टरी की पढ़ाई के दरम्यान इंग्लैण्ड में वे ईसाइयों के सम्पर्क में आये, थोड़ा-बहुत इस्लाम का भी परिचय हुआ। इन सबको लेकर उनके मन में कई शंकाएँ पैदा हुई थीं, जिनका निराकरण श्रीमद् राजचन्द्रजी ने किया था। जब वे दक्षिण अफ्रीका गये, तब उनकी प्रार्थना में ईसाई, पारसी, इस्लाम आदि धर्मों के तत्त्व भी समाविष्ट होते चले गये। एक व्यापक मानव-धर्म उनकी वाणी तथा आचार से परिलक्षित होता था। उनकी वाणी और व्यवहार से विज्ञान-युग के अनुरूप जीवन-दृष्टि अभिव्यक्त होती थी। गांधीजी की इस व्यापक भूमिका के सामने संकीर्ण हिन्दूवाद टिक नहीं पाता था और हिन्दू धर्म के ठेकेदार इसे बर्दाश्त नहीं कर पा रहे थे।

गांधीजी ने समाज-सुधार और परिवर्तन का विचार दिया, काम किया। बचपन से ही वे अस्पृश्यता, जात-पाँत और ऊँच-नीच के भेदभावों को मिटाने के लिए प्रयत्नशील थे। अपने आश्रम में उन्होंने एक हरिजन परिवार को विशेष आग्रह के साथ रखा। इसके कारण उनकी सगी बहन ने आश्रम छोड़ने की बात कही तो उन्होंने उसे जाने दिया। दाताओं ने इसके कारण आश्रम को दान देना बन्द कर दिया। आश्रम बन्द होने की नौबत आ गयी, पर वे अपने सिद्धान्त पर अडिग रहे। उन्होंने अपनी पत्रिका का नाम 'हरिजन' रखा, देशव्यापी हरिजन-यात्राएँ कीं, हरिजनों और आदिवासियों के लिए सेवक-संघों की स्थापना की। महिलाओं को घर की चहारदिवारी से बाहर निकाला तथा महत्त्वपूर्ण जिम्मेदारियाँ सौंपी। महिलाओं ने भी सौंपी गयीं अपनी जिम्मेदारियों को पूरा करके दिखाया। हिन्दू धर्म में जिनका स्थान सर्वोच्च माना जाता था, जो धर्मधुरन्धर माने जाते थे, आर्य धर्म के बारे में जिनके फैसले अन्तिम माने जाते थे, उनको यह सब सहन नहीं होता था। तिलक महाराज तो खास पुणे के रहनेवाले थे, और सावरकरजी भी महाराष्ट्र के ही थे। उन्हीं के जमाने में गांधीजी भारत आये थे। दक्षिण अफ्रीका के उनके काम के बारे में भारत के लोगों को जानकारी थी, जिसका लाभ भारत में काम करते समय उन्हें मिला। भारत आने के तुरन्त बाद उन्होंने तीन महत्त्वपूर्ण काम किए :

(१) गिरमिटिया यानी बन्धुआ मजदूरों को गोरे जमींदारों द्वारा भारत से दक्षिण अफ्रीका ले जाये जाने की प्रथा को समाप्त कराया।

(२) गुजरात के वीरमगाम में अत्यन्त बदनाम और तिरस्कृत जकात चौकी को बन्द कराया।

(३) चम्पारण के किसानों पर गोरे नीलहों द्वारा होने वाले अत्याचारों से किसानों को मुक्ति दिलायी। चम्पारण का काम बड़ी आसानी से और तेजी से हुआ।

ये काम उनके दक्षिण अफ्रीका के कामों जैसे ही थे और सभी काम एक ही वर्ष सन् १९१७ में पूरे हुए। इसके बाद बारडोली-सत्याग्रह, खेड़ा-सत्याग्रह, वायकोम-सत्याग्रह, नागपुर का झण्डा-सत्याग्रह आदि, कई सफल सत्याग्रहों का सिलसिला चला और उनकी यश-माला में नये-नये मोती जुड़ते गये। रावी नदी के तट पर पारित पूर्ण स्वराज्य का प्रस्ताव, जलियाँवाला बाग की घटना और सन् १९३० के नमक-सत्याग्रह ने तो ब्रिटिश साम्राज्य की नींव ही हिला कर रख दी थी।

हिन्दू धर्म के ठेकेदारों के लिए यह सब असह्य बनता जा रहा था। पुणे के इन धर्मधुरन्धरों ने पेशवाओं के जमाने से राज्यसत्ता का स्वाद चखा था। इस प्रकार धर्मसत्ता और राजसत्ता का संयुक्त अहंकार फूँफकारते हुए अपना फन पटक रहा था। लेकिन कोई भी गांधीजी की विजय-यात्रा को रोकने में समर्थ नहीं था। गांधीजी उनकी आँखों की किरकिरी बने हुए थे। उनको लगता था कि किसी भी प्रकार गांधीजी से मुक्ति मिलनी चाहिए, तभी समाज में उनका वर्चस्व फिर से कायम हो सकेगा। गोडसे का दावा था कि गांधीजी मरते समय 'हे राम' नहीं बोले। इस बात से भी उनके स्तर का पता चलता है। इतनी छोटी-सी बात उनके लिए बड़ी चिन्ता का कारण बन गयी। क्योंकि उन्हें लगता है कि अगर यह सिद्ध हो जाय कि गांधी रामभक्त थे तो फिर उनके 'राम-नाम के ठेके' का क्या होगा? इसलिए यह उनको कैसे पुसाता? और, आम हिन्दुओं के मन पर गांधीजी की जो पकड़ थी, उसे समाप्त करना उनके जीते-जी तो असम्भव था। तब एक मात्र उपाय उन्हें सूझा कि किसी भी प्रकार गांधीजी को समाप्त कर दिया जाय। यही है गांधी-हत्या के पीछे पुणे के कट्टर हिन्दूवादियों के षड्यंत्र का प्रमुख कारण!

इसके लिए उन्होंने गुप्त रूप से, लुकछिप कर हत्या के षड्यंत्र रचे। भोले-भाले बच्चों के मन में विष घोलना शुरू किया। मनगढ़न्त किस्से जोड़कर मुसलमानों के खिलाफ हिन्दुओं के दिलों में वैरभाव भरे। मुसलमानों को

अपनाकर राष्ट्र की मुख्यधारा में लाने के, गांधीजी के, प्रयासों को मुसलमानों की खुशामद बताकर हिन्दू युवाओं के दिलों में जहर भरा और उन्माद पैदा किया। इतना होते हुए भी बहुत ही कम संख्या में युवा उनके साथ गये। लेकिन हत्या के लिए तो एक व्यक्ति भी काफी होता है। उस एक की पूर्ति गोडसे ने की।

प्रश्न— एक और बात समझ में नहीं आ रही है, वह भी पूछ लेता हूँ। गांधीजी हिन्दुओं को जितने कठोर वचन कहते थे, उतने कठोर वचन मुसलमानों को नहीं कह पाते थे। आपका क्या मन्तव्य है ?

उत्तर— गांधीजी खुद को सनातनी हिन्दू मानते थे, और एक नैष्टिक व्यक्ति अपने आत्मीय जन से जिस प्रकार बातें करता है उसी प्रकार वे लोगों से बातें करते थे। आमतौर पर कठोर वचन बोलना उनके स्वभाव में नहीं था। फिर भी कभी-कभार, स्थिति असह्य होने पर, कुछ कठोर बातें कह देते थे। ऐसी ही कुछ कठोर बातें आपकी जानकारी के लिए प्रस्तुत कर रहा हूँ। ये बातें महात्मा गांधी के सचिव प्यारेलाल ने अपने महत्त्वपूर्ण ग्रंथ 'महात्मा गांधी : पूर्णाहुति' में लिखी हैं।

“दूसरे दिन दिल्ली के कुछ मौलाना गांधीजी से मिलने आये। वे अपने साथ कुछ जंग लगे हुए हथियार लाये और बोले कि आपकी अपील के जवाब में मुसलमानों ने ये हथियार सौंपे हैं। गांधीजी ने उनसे कहा कि यह तो केवल ढोंग है। इससे उनका हृदय बदल गया है ऐसा प्रकट नहीं होता। मौलाना लोगों ने विरोध किया और कहा कि आपके आने से स्थानीय मुसलमानों के दृष्टिकोण में 'बड़ी तब्दीली' आयी है। हमें भरोसा है कि थोड़े ही समय में शहर में पूरी शान्ति का राज्य फैल जायगा।”

उनके अतिशयोक्ति और टालमटूल करने वाले उत्तरों से गांधीजी को चोट पहुँची। गांधीजी ने उन्हें संख्त चेतावनी दी : 'आप अपने आपको धोखा न दीजिए। अगर मुसलमान पूरी तरह अपने दिलों को साफ नहीं कर लेंगे, तो मेरे यहाँ रहने से मुसलमानों को कोई फायदा नहीं होगा।’

दिसम्बर १९४७ के अन्तिम दिनों में एक प्रार्थना-प्रवचन में उन्होंने कहा :

“मैं मुस्लिम अल्पसंख्यकों से जोर देकर कहूँगा कि वे जहरीले वातावरण से ऊपर उठें और अपने आदर्श आचरण द्वारा यह सिद्ध कर दें कि भारतीय संघ में सम्मानपूर्ण जीवन बिताने का एकमात्र मार्ग यही है कि मन में कोई चोरी और दुराव-छिपाव न रखकर भारत का पूर्ण नागरिक बनकर रहा जाय।”

पाकिस्तान में हिन्दुओं पर हो रहे अत्याचारों से वे अत्यन्त व्यथित थे और भारत के मुसलमानों का इस हालत में क्या फर्ज है, इसकी ओर उनका ध्यान खींचते रहते थे।

“शहीद के साथ गांधीजी की बात चल ही रही थी कि स्थानीय मुसलमानों का एक दल गांधीजी से मिलने आया। गांधीजी ने उन्हें भी यही सलाह दी : अगर आप महसूस करते हैं कि पाकिस्तान में अल्पसंख्यकों के साथ न्याय नहीं किया जा रहा है, तो आपको एक सार्वजनिक वक्तव्य द्वारा अपने विचार प्रकट करने चाहिए और साहस के साथ साफ शब्दों में कहना चाहिए कि यह पाकिस्तान के लिए शर्म और इस्लाम के लिए कलंक की बात है। मुसलमान मित्रों ने स्वीकार किया कि पाकिस्तान का व्यवहार अल्पसंख्यकों के साथ अत्याचारपूर्ण, अनैतिक और इस्लाम के विरुद्ध है, हमें वह पूरी तरह नापसन्द है। उन्होंने यह भी कहा कि यह पाकिस्तान के हाथ में है कि पाकिस्तान में अल्पसंख्यकों के साथ उचित व्यवहार करके वह भारतीय मुसलमानों की सुरक्षा को निश्चित बना दे। उन्होंने गांधीजी को वचन दिया कि वे एक वक्तव्य निकालेंगे और उसमें ये सब बातें शामिल कर लेंगे”^{१२}

११ जनवरी को कुछ राष्ट्रवादी सौलाना, जो भारत में ही रहना चाहते थे और, जिन्होंने पाकिस्तान नहीं जाने का पक्का मन बना लिया था, गांधीजी से मिलने आये। उनका कहना था कि उनके साथ हो रहे व्यवहार से वे तंग आ गये हैं। उन्होंने बतौर शिकायत कहा कि अगर यही हालत है तो आप (गांधीजी) उनको इंग्लैण्ड क्यों नहीं भेज देते? गांधीजी ने उनको उलाहना देते हुए कहा :

“आप अपने को राष्ट्रवादी मुसलमान कहते हैं और फिर भी ऐसी बातें करते हैं?’ शाम को अपनी प्रार्थना-सभा में उन्होंने... कहा : पाकिस्तान के मुसलमान पागल हो गये हैं। अधिकांश हिन्दुओं और सिक्खों को उन्होंने बाहर निकाल दिया है। अगर भारतीय संघ के हिन्दू भी ऐसा ही करेंगे, तो इससे उन्हीं का नाश होगा।”^{१३}

१३ जनवरी को उपवास पर जाने से पहले उन्होंने कहा :

“यदि पाकिस्तान संसार के विविध धर्मों को मानने वाले लोगों के समान दर्जे की और जान-माल की सुरक्षा की गारण्टी नहीं देगा और भारत उसकी नकल करेगा, तो दोनों का नाश निश्चित है। उस स्थिति में इस्लाम भारत और पाकिस्तान में ही मरेगा, परन्तु संसार में नहीं मरेगा।”^{१४}

उसी समय समाचार मिला कि पाकिस्तान से हिन्दू और सिख विस्थापितों

को लेकर आनेवाली ट्रेन पर हमला कर अनेक लोगों को जान से मार डाला गया। इससे उद्विग्न होकर सायंकालीन प्रार्थना-प्रवचन में गांधीजी ने कहा :

“ऐसी बातों को संघ कब तक सहन कर सकता है ? अपने उपवास के बावजूद मैं कब तक हिन्दुओं और सिक्खों के धीरज पर भरोसा रख सकता हूँ ? पाकिस्तान वालों को अपनी ये हरकतें बन्द करनी होंगी। उन्हें यह प्रण करना होगा कि जब तक हिन्दू और सिक्ख पाकिस्तान लौट कर वहाँ सुरक्षित नहीं रह सकेंगे, तब तक वे चैन नहीं लेंगे।”^{११२}

भारत और पाकिस्तान में जिन दिनों हिंसा का नग्न ताण्डव चल रहा था, उन दिनों महात्मा गांधी ने इस सन्दर्भ में बहुत कुछ कहा था। जिन्हें इस विषय में अधिक गहरायी से अध्ययन करना हो, उन्हें प्यारेलाल लिखित 'महात्मा गांधी : पूर्णाहुति' पढ़नी चाहिए। इस ग्रन्थ में किसी भी जिज्ञासु की बौद्धिक जिज्ञासा को समाधान देने के लिए पर्याप्त सामग्री है। इस युग के महानतम पुरुष महात्मा गांधी के बारे में झूठ का लम्बा-चौड़ा जो जाल बुना गया है, इस ग्रन्थ में प्रस्तुत किये तथ्य उसे भी चीर कर 'सत्य' को उजागर करते हैं। महात्मा गांधी जैसे महापुरुष की मापतौल करना आसान नहीं होता! गांधी का जज बनने की पात्रता हममें से किसमें है ? लेकिन यदि हम 'जज' बनने का दुस्साहस करते ही हैं तो कम-से-कम 'सत्य' से मुख तो न मोड़ें! 'सत्य' जिसके लिए महात्मा गांधी जिये और अपनी कुर्बानी दी!

सन्दर्भ

१. महात्मा गांधी : पूर्णाहुति—चतुर्थ खण्ड	पृष्ठ - ३६०
२. वही	पृष्ठ - ३८५-८६
३. वही	पृष्ठ - ३८७
४. वही	पृष्ठ - ३८७-८८
५. वही	पृष्ठ - ४८
६. वही	पृष्ठ - १३३-३४
७. वही	पृष्ठ - ३३
८. वही	पृष्ठ - ३५४
९. वही	पृष्ठ - १३३
१०. वही	पृष्ठ - ३६९
११. वही	पृष्ठ - ३७२
१२. वही	पृष्ठ - ३८१-८२

अभियोग-पत्र

हिन्दूवादी अन्य कई छल करते हैं। उदाहरण के लिए वे जनमानस में यह घुसाने का प्रयत्न करते हैं कि स्वामी विवेकानन्द, सुभाष बाबू, भगत सिंह, चन्द्रशेखर आजाद आदि शहीद हिन्दूवादी थे। वास्तविकता यह है कि इनमें से एक भी क्रान्तिकारी हिन्दूवादी नहीं था। फिर भी वे लगातार प्रचार से इस प्रकार का असर डालने का प्रयास करते रहते हैं। इसी प्रकार का प्रचार सरदार वल्लभभाई पटेल के बारे में भी किया जाता है कि सरदार पटेल हिन्दूवादी थे या हिन्दूवाद के पक्षधर थे। निम्नलिखित दस्तावेज उनके इस प्रचार को गलत सिद्ध करता है :

“मेरे पास जो रिपोर्ट आयी हैं वे सिद्ध करती हैं कि राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ (आर० एस० एस०) और हिन्दू महासभा खासकर संघ के कार्यकलापों के कारण देश में जिस वातावरण का निर्माण हुआ उसी के चलते गांधीजी की हत्या हुई। गांधीजी की हत्या के षड्यंत्र में हिन्दू महासभा का जहाल गुट्ट भी शामिल था। इन तथ्यों के बारे में मेरे मन में लेश मात्र भी सन्देह नहीं है।”

(डॉ० श्यामा प्रसाद मुखर्जी के नाम सरदार पटेल का पत्र—

‘सरदार पटेल्स कोरसपोन्डेन्स’ खण्ड-६, पृष्ठ-३२३)

“संघ के अग्रणियों के भाषण साम्प्रदायिकता के जहर से भरे हुए होते हैं। संघ वालों के विषवमन के कारण ही गांधीजी की हत्या हुई। संघ के लोगों ने गांधीजी की हत्या के बाद आनन्द मनाया और मिठाइयाँ बाँटीं।”

(आर० एस० एस० के सरसंघचालक श्री गोलवलकर के नाम सरदार पटेल का पत्र)

प्रार्थना सभा में गांधीजी का प्रवचन

नयी दिल्ली,

१२ जनवरी, १९४९

उपवास या तो हम स्वास्थ्य-सम्बन्धी नियमों के अनुसार तंदुरुस्ती के लिए करते हैं अथवा कोई अन्याय किया गया हो और करने वाले को वैसा अनुभव हुआ हो तो उसके प्रायश्चित्त के रूप में हम उपवास करते हैं। इन उपवासों में उपवासी का अहिंसा में विश्वास होना जरूरी नहीं है। परन्तु एक उपवास ऐसा होता है, जिसे करने के लिए कभी-कभी अहिंसा का पुजारी विवश हो जाता है, जब उसे समाज द्वारा किये गये किसी अन्याय का विरोध करना पड़ता है। यह उपवास वह तब करता है जब अहिंसा के पुजारी के नाते उसके पास और कोई उपाय नहीं रह जाता। मेरे लिए ऐसा ही अवसर इस समय उपस्थित हुआ है।

जब ९ सितम्बर, १९४७ को मैं कलकत्ते से दिल्ली लौटा था, तो जिन्दादिल दिल्ली मुझे मुर्दों की नगरी दिखाई दी थी। मैंने तुरन्त समझ लिया कि मुझे अब दिल्ली में ही रहकर 'करना या मरना' होगा। मुस्तैदी के साथ की गयी फौज और पुलिस की कार्रवाई से ऊपरी शान्ति दिल्ली में हो गयी है। परन्तु लोगों के दिलों में तूफान भरा है। वह किसी भी दिन फूट सकता है। इसे मैं 'करने' की प्रतिज्ञा का पालन नहीं मानता। यह पालन ही मुझे अपने अतुलनीय मित्र मृत्यु से अलग रख सकता है।

मैं कभी अपने को निरुपाय महसूस करना पसन्द नहीं करता। सत्याग्रही को कभी ऐसा महसूस करना भी नहीं चाहिए। कुछ दिनों से अपनी कापुरुषता मुझे खाये जा रही है। उपवास आरम्भ करते ही वह तुरन्त दूर हो जायेगी। मैं इस बात पर पिछले तीन दिनों से विचार करता रहा हूँ। अन्तिम निर्णय मुझे अचानक सूझ गया, और अब मैं सुखी हूँ। कोई भी मनुष्य, यदि वह शुद्ध है तो, अपने जीवन से अधिक मूल्यवान् वस्तु और क्या दे सकता है? मैं आशा और प्रार्थना करता हूँ कि मुझ में इतनी शुद्धता हो कि अपने इस उपवास को मैं उचित सिद्ध कर सकूँ।

मैं यह मानने का साहस करता हूँ कि भारत की आत्मा यदि नष्ट हो गयी, तो इस पीड़ित, तूफानों से विचलित और भूखी दुनिया के लिए कोई आशा

नहीं रहेगी। कोई मित्र या शत्रु—यदि कोई हो तो—मुझे से नाराज न हो। ऐसे मित्र भी हैं जो मानव के मन को बदलने के लिए उपवास के उपाय में विश्वास नहीं रखते। वे मुझे सहन कर लें और मुझे भी कार्य की वही स्वतंत्रता दें जो वे अपने लिए चाहते हैं। ईश्वर को अपना परम और एकमात्र सलाहकार मान कर मुझे लगा कि और किसी सलाहकार से इस विषय में सलाह लिये बिना ही मुझे यह निर्णय कर लेना चाहिए। अगर मैंने कोई भूल की हो और उसका मुझे पता लग जाय, तो मुझे सार्वजनिक रूप में उसकी घोषणा करने में और अपना गलत कदम वापस लेने में जरा भी संकोच नहीं होगा। मुझे ऐसी किसी गलती की प्रतीति होने की सम्भावना नहीं दिखाई देती।..... मेरा अनुरोध है कि मुझ से कोई बहस न की जाय और इस कदम का अनिवार्य रूप में समर्थन किया जाय। यदि सारे भारत की ओर से या कम-से-कम दिल्ली की ओर से इसका अनुकूल उत्तर मिला, तो इस उपवास का शीघ्र अन्त हो सकता है।

लेकिन मेरा उपवास जल्दी समाप्त हो या देर से या कभी भी समाप्त न हो, जिसे संकट कहा जा सकता है उससे निबटने में कोई नरमी न दिखाई जाय।..... कर्तव्य की भाँति शुद्ध उपवास का पुरस्कार भी उपवास स्वयं होता है। मैं उपवास से होनेवाले परिणाम के लिए उपवास आरम्भ नहीं कर रहा हूँ। मैं इसलिए उपवास कर रहा हूँ कि मुझे करना ही चाहिए। इसलिए मैं सबसे अनुरोध करता हूँ कि वे उपवास के हेतु की परीक्षा अनासक्त भाव से करें, और अगर मुझे मरना ही हो, तो शान्ति से मरने दें। मृत्यु से मुझे निश्चित शान्ति मिलेगी। मैं भारत, हिन्दू धर्म, सिक्ख धर्म और इस्लाम के नाश का निःसहाय साक्षी बनूँ, इसकी अपेक्षा मृत्यु मेरे लिए एक भव्य मुक्ति सिद्ध होगी। यदि पाकिस्तान संसार के विविध धर्मों को मानने वाले लोगों के समान दर्जे की और जान-माल की सुरक्षा की गारण्टी नहीं देगा और भारत उसकी नकल करेगा, तो दोनों का नाश निश्चित है। उस स्थिति में इस्लाम भारत और पाकिस्तान में ही मरेगा, परन्तु संसार में नहीं मरेगा। लेकिन हिन्दू धर्म और सिक्ख धर्म के लिए तो भारत से बाहर कोई स्थान ही नहीं है।

इस वक्तव्य के अन्त में एक प्रार्थना और एक अपील थी : “जो लोग मुझ से मतभेद रखते हैं वे मेरा कितना ही कड़ा विरोध करें, तो भी मैं उनका सम्मान करूँगा। मेरे उपवास से अन्तरात्मा में जागृति आनी चाहिए, उसमें जड़ता नहीं आनी चाहिए। जरा सोचिए, प्यारे भारत में कितनी सड़ांध आ गयी है। तब आपको यह सोच कर हर्ष होगा कि उसका एक विनीत पुत्र ताँ ऐसा है, जिसमें यह सुखद कदम उठाने जितनी शक्ति और सम्भवतः शुद्धता है। अगर ये दोनों चीजें उसमें नहीं हैं, तो वह

पृथ्वी का भार है। वह जितना जल्दी विलीन होकर भारतीय वायुमण्डल का भार उतार दे उताना ही उसके लिए और सबके लिए अच्छा है।" ('महात्मा गांधी : सम्पूर्ण वाङ्मय'—खण्ड-१०)

परिशिष्ट-२

प्रार्थना सभा में गांधीजी का प्रवचन

नयी दिल्ली,

१३ जनवरी, १९४८

मेरी उम्मीद है कि मैं १५ मिनट में जो कहना है वह नहीं कह सकूँगा। बहुत कहना है, इसलिए शायद कुछ ज्यादा समय भी लगे।

आज तो मैं यहाँ आ सका। पहला दिन है और आज तो खाना भी खाया है। सुबह साढ़े नौ बजे खाना शुरू किया, मगर बहुत लोग आये थे, सो ११ बजे पूरा कर सका। मगर कल से शायद मैं यहाँ तक नहीं पहुँच सकूँगा। अगर आप चाहते हैं कि प्रार्थना तो होनी ही चाहिए, तो आप आवें। लड़कियाँ या कम-से-कम एक लड़की आ जायेगी और प्रार्थना करेगी।

मेरे पास आज सारे दिन में काफी लोग आये थे। सब एक ही सवाल पूछते हैं कि किस ने गुनाह किया है? किसके विरोध में फाका है? कहाँ तक चलेगा? किस पर इलजाम है? मैं इलजाम देने वाला कौन? किसी पर इलजाम नहीं है। मगर मैं इस फाके में से जिन्दा न उठ सका तो इलजाम मुझ पर ही है। मैं नालायक सिद्ध होऊँ और ईश्वर मुझे उठा ले, तो उसमें बड़ी बात क्या? मगर आज हिन्दू अपने धर्म का पालन नहीं करते, उसका मुझे दुख है। अगर सब मुसलमानों को यहाँ से हटाने की आबोहवा पैदा कर दें, तब हिन्दू-सिक्ख ने अपने धर्म को और हिन्द को धब्बा लगा दिया ऐसा समझना चाहिए। यह समझने लायक बात है। लोग मुझे पूछते हैं, क्या मुसलमानों के लिए 'द फाका' है? बात ठीक है। मैंने तो हमेशा अकलियतों का, दबे हुआँ का पक्ष लिया है। आज यहाँ के मुसलमानों को मुस्लिम लीग का सहारा नहीं रहा। हिन्दुस्तान के दो टुकड़े हुए। जहाँ भी थोड़े लोग बिना सहरों के रह जाते हैं, उनको मदद करना मनुष्य मात्र का धर्म है। यह फाका दरअसल आत्मशुद्धि के लिए है। सबको शुद्ध होना है। सब शुद्ध नहीं होते हैं, तो मामला बिगड़ जाता है।

मुसलमानों को भी शुद्ध होना है। ऐसा नहीं है कि हिन्दू-सिक्ख शुद्ध हो जायँ और मुसलमान नहीं। मुसलमान भी शुद्ध और सच्चे नहीं बनेंगे, तो मामला बिगड़ेगा। यहाँ के मुसलमान भी बेगुनाह नहीं हैं। सबको अपना गुनाह कबूल कर लेना चाहिए। मैं मुसलमानों की खुशामद करने के लिए फाका नहीं करता हूँ। मैं तो सिर्फ ईश्वर की ही खुशामद करने वाला हूँ। जब देश के टुकड़े नहीं हुए थे, उससे पहले ही हिन्दू, मुसलमान और सिक्खों के दिलों के टुकड़े हो गये थे। मुस्लिम लीग तो गुनहगार है, पर दूसरे मुसलमानों ने, हिन्दुओं ने और सिक्खों ने भी गलतियाँ की हैं। तीनों को अगर दिली दोस्त बनना है, तो उन्हें साफ दिल बनना होगा। उनके बीच में सिर्फ ईश्वर ही साक्षी रहे। आज हम धर्म के नाम से अधर्मी बन गये हैं। हम तीनों धर्म से गिर चुके हैं।

फाका मुसलमानों के नाम से शुरू हुआ है। सो उन पर ज्यादा जिम्मेदारी आती है। उनको निश्चय करना है कि उन्हें हिन्दू-सिक्खों के साथ दोस्त बनकर, भाई बनकर रहना है; यूनियन के प्रति वफादार रहना है, वफादार हैं, ऐसा कहने से काम नहीं होता है। मैं तो उनके कामों से देख लेता हूँ।

सरदार की बातें मेरे पास आती हैं। मुझे मुसलमान लोग कहते हैं कि 'आप और जवाहरलालजी तो अच्छे हैं, मगर सरदार अच्छे नहीं हैं।' यह कहाँ की बात है? ऐसी बात करेंगे, तो काम कैसे चलेगा? वे हाकिम हैं। सब मिलकर हुकूमत चलाते हैं। वे आपके नौकर हैं। सब की साथ जिम्मेदारी है, तभी तो कैबिनेट बनती है। सरदार अगर कोई गलती करते हैं, तो मुझ से कहिए। मैं तो उनको सब कुछ कह सकता हूँ। सरदार ने क्या कहा है, यह बताने में अर्थ नहीं। सरदार ने क्या गुनाह किया, सो बताइए। जितनी जवाबदारी पूरी कैबिनेट की है, उतनी ही आपकी भी है, क्योंकि कैबिनेट आपके प्रतिनिधियों की है।

मुसलमानों को निर्भय और बहादुर बनना है—एक खुदा का ही भरोसा रखना है। न गांधी का, न जवाहरलाल का, न सरदार का, न कांग्रेस का और न लीग का, खुदा के नाम पे वे यहाँ रहेंगे और खुदा के नाम पर मरेंगे। हिन्दू-सिक्ख कितना भी बुरा काम करें, मगर वे बुराई न करें। मैं तो आपके साथ पड़ा हूँ। आपके साथ मरूँगा। आज मरने के लिए तो पड़ा ही हूँ। मुझ को सुनाते हैं कि सरदार काफी कड़वी बातें कह देते हैं। मैंने उनको कई दफा कहा है कि आपकी जबान में काँटा है। मगर मैं जानता हूँ कि उनके दिल में काँटा नहीं है। उनका हृदय शुद्ध है। वे खरी बात सुनाने वाले हैं। कलकत्ते में और लखनऊ में उन्होंने कहा है कि मुसलमान यहाँ रह सकते हैं, मगर मैं लीगी मुसलमानों पर ऐतबार नहीं कर सकता। वह कहते

हैं कि कल तक जो मुसलमान दुश्मन थे, वे आज दोस्त बन गये, यह मैं कभी नहीं मानूँगा। उन्हें शक लाने का पूरा अधिकार है। उस शक का आप सीधा अर्थ करें। मैंने कहा है कि शक जब साबित होता है, तब उस को काटें—मगर पहले से उन्हें बुरा मानकर कुछ न करें।

तब हिन्दू-सिक्ख क्या करें? कैबिनेट क्या करे? मैं अकेला रहूँगा, तब भी एक ही बात करूँगा। जो बंगाली भजन 'एकला चल रे' अभी गाया गया है वह गुरुदेव का बनाया हुआ है। मुझे यह बहुत प्रिय है। नोवाखाली की यात्रा में वह करीब-करीब रोज गाया जाता था। उसका अर्थ है, 'तेरे साथ कोई भी नहीं आता है, तो भी तू अकेला ही चलता जा। तेरे साथ ईश्वर तो है।' हिन्दू-सिक्ख यदि सच्चे नहीं बनते हैं और उनमें इतनी बहादुरी नहीं है कि इतने थोड़े मुसलमानों को हिफाजत से रखें, तो मैं जीकर भी क्या करूँगा? मैं तो यही कहूँगा कि पाकिस्तान में अगर सभी सिक्खों और हिन्दुओं को काट डालें तो भी यहाँ एक भी मुसलमान को हम न काटें। कमजोर को मारना बुजदिली है।

तब फाका छूटने की शर्त क्या है? शर्त यह है कि हिन्दुस्तान के और हिस्सों में कुछ भी हो, मगर दिल्ली बुलन्द रहे, शान्त रहे, दिल्ली का जल्लोजलाल आबाद रहे। मुसलमान बेखटके दिल्ली में घूम सकें। सुहरावर्दी साहब, जो गुण्डों के सरदार माने जाते हैं, वह भी अकेले बेखटके घूम सकें, रात को भी चले जायँ, तो उन्हें कुछ डर न रहे। ऐसा हो जाय, तो मेरा फाका छूट जायेगा। आज तो सुहरावर्दी साहब को मैं प्रार्थना में नहीं ला सका। उनका कोई अपमान करे, तो वह मेरा अपमान होगा। यह मुझ से सहन नहीं होगा। इसलिए मैं उन्हें नहीं लाता। सुहरावर्दी कैसे भी हों, इतना मैं कह सकता हूँ कि कलकत्ते में उन्होंने मेरा पूरा साथ दिया। मुसलमान हिन्दुओं के मकान दबाकर बैठ गये थे, वहाँ से उन्होंने मुसलमानों को खींच-खींच कर निकाला था। ('महात्मा गांधी : सम्पूर्ण वाङ्मय'—खण्ड १०)

परिशिष्ट-३

मैं साफ लफ्जों में कह चुका हूँ कि मेरा उपवास यूनियन के मुसलमानों की खातिर है। इसलिए वह यूनियन के हिन्दू और सिक्खों और पाकिस्तान के मुसलमानों के सामने है। इस तरह से यह उपवास पाकिस्तान की अकलियत की खातिर भी है। जो विचार मैं पहले समझा चुका हूँ, उसी को यहाँ थोड़े में दोहराने की कोशिश कर रहा हूँ।

मैं यह आशा नहीं रख सकता कि मेरे जैसे अपूर्ण और कमजोर इन्सान का फाका दोनों तरफ की अकलियतों को सब तरह के खतरों से पूरी तरह बचाने की ताकत रखे। फाका सब की आत्मशुद्धि के लिए है। उसकी पवित्रता के बारे में किसी तरह का शक लाना गलती होगी।

(१५ जनवरी, १९४८ को नयी दिल्ली की प्रार्थना-सभा में गांधीजी का प्रवचन, 'महात्मा गांधी : सम्पूर्ण वाङ्मय'—खण्ड-९०)

परिशिष्ट-४

गांधीजी के उपवास के तीसरे दिन भारत सरकार ने एक विज्ञप्ति में यह घोषणा की कि हमने पाकिस्तान को ५५ करोड़ रुपये की राशि तुरन्त चुका देने का निश्चय किया है। उसने पहले जो रवैया अपनाया था उसे 'कानूनी और दूसरे कारणों से' ठीक बताते हुए पाकिस्तान सरकार की इस सम्बन्ध की दलीलों को चुनौती दी और उन्हें असत्य बताया। विज्ञप्ति में यह भी कहा गया :

“राष्ट्रपिता के उपवास पर जो विश्वव्यापी चिन्ता प्रकट की गयी है, उसमें भारत सरकार भी अपना स्वर मिलाती है। उन्हीं की तरह सरकार ने भी उस दुर्भावना, पूर्वाग्रह तथा सन्देह को मिटाने के उपाय और साधन उत्सुकता से ढूँढे हैं, जिनकी वजह से भारत और पाकिस्तान के सम्बन्ध विषाक्त हुए हैं। गांधीजी को जो उद्देश्य प्रिय है उसमें हर सम्भव तरीके से सहायक होने की तीव्र इच्छा से प्रेरित होकर सरकार ने राष्ट्र की आत्मा के भौतिक कष्ट को दूर करने के आन्दोलन में ठोस और उल्लेखनीय योग देने की कोशिश की है, ऐसा करके वह राष्ट्र के मानस को वर्तमान उत्पात, कटुता और सन्देह से मोड़ कर रचनात्मक और सर्जनात्मक प्रयत्न में लगाना चाहती है। सरकार यथासम्भव, राष्ट्रहित को हानि पहुँचाये बिना, भारत और पाकिस्तान के बीच संघर्ष पैदा करनेवाले हर कारण को दूर करने के लिए उत्सुक है।”

(महात्मा गांधी : पूर्णाहुति : चतुर्थखण्ड, पृ० ३९३-३९४ ले० प्यारेलाल प्र० नवजीवन, अहमदाबाद)

परिशिष्ट-५

१८ जनवरी की सुबह फिर शान्ति-समिति की बैठक हुई। उसमें पहली रात के गैर-हाजिर लोग भी मौजूद थे। शहर के सभी महत्त्वपूर्ण समूहों

और संस्थाओं के प्रतिनिधि भी थे। उनमें करोलबाग, सब्जीमंडी और पहाड़गंज के तीन अत्यन्त पीड़ित भागों के निराश्रितों के प्रतिनिधि भी थे। उन सबने गांधीजी की लगाई हुई शर्तें स्वीकार कीं और निम्नलिखित प्रतिज्ञा पर हस्ताक्षर किये :

“हम घोषणा करना चाहते हैं कि यह हमारी हार्दिक इच्छा है कि हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख और दूसरे सब धर्मों को मानने वाले लोग फिर से आपस में मिलकर भाई-भाई की तरह दिल्ली में रहें। हम यह प्रतिज्ञा करते हैं कि हम मुसलमानों की जान-माल और धर्म की रक्षा करेंगे और जिस तरह की घटनाएँ यहाँ पहले हुई हैं उन्हें फिर से नहीं होने देंगे।

(१) हम गांधीजी को यह विश्वास दिलाना चाहते हैं कि ख्वाजा कुतुबुद्दीन के उर्स का मेला जिस तरह पहले हुआ करता था वैसे ही अब भी होगा।

(२) जिस तरह मुसलमान दिल्ली के सभी मोहल्लों में और खास करके सब्जीमंडी, करोलबाग और पहाड़गंज में पहले आया-जाया करते थे वैसे ही फिर से वे बेखटके और बेखतरे आ जा सकेंगे।

(३) जिन मस्जिदों को मुसलमान छोड़ गये हैं और जो अब हिन्दुओं और सिक्खों के कब्जे में हैं, वे मुसलमानों को लौटा दी जायेंगी। सरकार ने जिन स्थानों को खासतौर पर मुसलमानों के लिए छोड़ रखा है, उन पर जबरन कब्जा करने की कोशिश नहीं की जायेगी।

(४) जो मुसलमान दिल्ली से बाहर चले गये हैं वे अगर वापस आना चाहें, तो हमारी ओर से उनके लौटने का विरोध नहीं होगा और वे पहले की तरह ही अपना कारोबार कर सकेंगे। हम यह विश्वास दिलाते हैं कि ये सब बातें हम अपनी कोशिश से पूरी करेंगे और इसके लिए पुलिस या सेना की मदद नहीं लेंगे।

महात्माजी से हमारा अनुरोध है कि वे हमारी बातों पर विश्वास करके अपना उपवास छोड़ दें और जिस तरह आज तक वे देश का मार्गदर्शन करते रहे हैं वैसे ही करते रहें।”

जब हस्ताक्षर कराये जा रहे थे उस समय बिड़ला भवन से फोन पर खबर आयी कि गांधीजी की जलत अचानक खराब हो गयी है। इस पर डॉ० राजेन्द्रप्रसाद समिति के सदस्यों के साथ जल्दी से बिड़ला-भवन पहुँचे, ताकि शान्ति-समिति के सदस्यों द्वारा स्वीकृत शर्तें गांधीजी को पहले ही समझा दी जायँ। सब सदस्यों के वहाँ एकत्रित होने में तो कुछ समय लगता और इधर गांधीजी की तबीयत की दृष्टि से एक-एक मिनट का महत्त्व था।

जब सारे सदस्य बिड़ला-भवन पहुँच गये तो गांधीजी का कमरा खचाखच भर गया। सभा में पंडित नेहरू, मौलाना आजाद, पाकिस्तान के उच्चायुक्त जाहिद हुसैन तथा दिल्ली के मुसलमानों, राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ, हिन्दू महासभा और विभिन्न सिक्ख संस्थाओं के प्रतिनिधि थे। दिल्ली प्रशासन के प्रतिनिधियों के नाते चीफ कमिश्नर तथा डिप्टी कमिश्नर थे।

डॉ० राजेन्द्रप्रसाद ने बतलाया कि किस प्रकार हम लोगों ने पिछली रात को पूरी चर्चा के बाद इस घोषणा पर वहीं और उसी समय हस्ताक्षर करने का निश्चय कर लिया था। परन्तु कुछ संस्थाओं के प्रतिनिधि उस सभा में उपस्थित नहीं थे इसलिए हमने सोचा कि जब तक बाकी सदस्यों के हस्ताक्षर न करा लिये जायँ तब तक ठहरें। बाद में यह काम हो गया। आज सुबह की मीटिंग में जिन्हें पहले दिन कुछ शंकाएँ रह गयी थीं उन्हें भी यह विश्वास हो गया कि अब हम अपनी जिम्मेदारी को पूरी तरह समझ कर गांधीजी से उपवास तोड़ने का अनुरोध कर सकते हैं। इस प्रतिज्ञा को कार्यान्वित कराने के लिए कुछ समितियाँ बना देने का निश्चय किया गया। डॉ० राजेन्द्रप्रसाद ने कहा कि सम्मिलित रूप में और पृथक्-पृथक् जो गारण्टियाँ दी गयी हैं उन्हें देखते हुए हम सबको आशा है कि अब आप अपना उपवास तोड़ देंगे। एक सदस्य ने वर्णन किया कि किस तरह आज प्रातःकाल १५० मुसलमानों के एक जुलूस को सब्जीमंडी ले जाया गया और वहाँ हिन्दुओं ने फल और जलपान से उनका स्वागत किया।

उत्तर में गांधीजी ने कहा : “मैंने जो माँगा था वह सब आपने मुझे दे दिया। लेकिन अगर आपके शब्दों का यह अर्थ हो कि आप अपने को सिर्फ दिल्ली की साम्प्रदायिक शान्ति के लिए ही जिम्मेदार मानते हैं और दूसरे स्थानों की घटनाओं से आपका कोई सम्बन्ध नहीं तो आपकी गारण्टी किसी काम की नहीं, मैं यह समझूँगा, और आप भी किसी दिन समझेंगे, कि उपवास छोड़ देना मेरी बड़ी भारी भूल थी। आपको अपनी प्रतिज्ञा के गूढ़ार्थ स्पष्ट रूप में समझ लेने चाहिए। आपने दिल्ली में जो सफलता प्राप्त की है उसे सारे भारत में प्राप्त करना है। अगर दिल्ली की परिस्थितियाँ सुधर गयीं, तो पाकिस्तान की परिस्थितियाँ भी सुधर जायेंगी।

(महात्मा गांधी : पूर्णाहुति : चतुर्थखण्ड, पृ० ४०७-४०९ ले० प्यारेलाल, प्र० नवजीवन, अहमदाबाद)